VI वित्तीय बाजार : विकास और वैश्वीकरण

6.1 आर्थिक वृद्धि के संवर्धन में उपयुक्त वित्तीय संस्थाओं और वित्तीय बाजारों को विकसित करने की महत्ता बताने की शायद ही आवश्यकता है। उदीयमान बाजारों में केंद्रीय बैंकों ने हाल के वर्षों में दक्ष बाजारों और संस्थाओं के विकास की दिशा में सचेत प्रयास किए हैं, अनिवार्यतः विश्व के विभिन्न भागों में 1990 के बाद के दशक में हुए अनेक वित्तीय संकटों के दौरान प्रणाली में उजागर हुई कुछ कमजोरियों के बाद । सारे विश्व में, केंद्रीय बैंकों में यह मान्यता बढ़ती जा रही है कि एक सुचारू रूप से चलने वाला वित्तीय बाजार अर्थव्यवस्था में ब्याज दर संकेतों को सुधार कर मौद्रिक नीति के बाजार आधारित लिखतों के दक्ष उपयोग को समर्थ बनाता है। मौद्रिक नीति की दक्षता को बढ़ाने के अलावा, गहन और सुचारू रूप के कार्य करने वाले वित्तीय बाजार घरेलू बचतों को जुटाने का संवर्धन करते हैं तथा वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं की आबंटनात्मक दक्षता को सुधारते हैं तथा एक अंतरराष्ट्रीय या एक क्षेत्रीय वित्तीय केंद्र के रूप में उभरने में मदद करते हैं, ('टर्नर एण्ड टी' डेक 1996) । सुदृढ़ घरेलू वित्तीय बाजार बाह्य अशांति के दिनों में भंडार (बफर) का कार्य करते हैं तथा संकट के समय घरेलू बैंकिंग प्रणाली को आघातों को झेलने में मदद करते हैं। इसके अलावा, वे हैजिंग लिखतों का विकास करने तथा व्यापक आर्थिक उद्वेगशीलता और वित्तीय अस्थिरता को कम करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। दक्ष वित्तीय बाजारों को अनेक अप्रत्यक्ष लाभ भी मिलते हैं - जैसे भौतिक तथा मानव पूंजी का तेजी से संचयन, अधिक स्थिर निवेश वित्तपोषण, तथा वे प्रौद्योगिकीय प्रगति को बढ़ाते हैं।

6.2 वित्तीय बाजार का विकास एक जटिल और समय खपानेवाली प्रक्रिया है। सुचारू रूप से कार्य करने वाले गहन और तरल बाजारों के विकास के लिए कोई शॉर्टकट नहीं है (तारापोर, 2000)। वित्तीय बाजारों के सुधार के लिए कुछ पूर्व-शर्तें हैं, जैसे व्यापक आर्थिक (समष्टिगत) स्थिरता, सबल और दक्ष वित्तीय संस्थाएं तथा संरचना, विवेकसम्मत विनियमन तथा पर्यवेक्षण, जमाकर्ता के सशक्त अधिकार तथा संविदागत अनुप्रवर्तन । बाजार की बुनियादी संरचना को सुधारने के उपायों को, कानूनी के उपयुक्त ढांचे के साथ-साथ सुधार के प्रारंभिक चरण से ही लागू किया जाना चाहिए। ये परिस्थितियां अंतर-बैंक लेनदनों तथा सक्रिय चलनिधि प्रबंधन सहित वित्तीय लेनदेनों की वृद्धि करने में सहायता करती हैं। साथ ही, कम से कम तीन प्रमुख व्यापक आर्थिक विशेषताएं हैं जो घरेलू वित्तीय बाजारों के सुधार को रोक सकती हैं, पहली है - भारी सरकारी घाटा निजी क्षेत्र के वित्तपोषण को सुखा सकता है, और इस प्रकार कंपनी ऋण बाजारों की वृद्धि को रोकते हैं। दूसरी है - उच्च और उद्वेगशील मुद्रास्फीति की दरें तथा अवास्तविक विनिमय दरें भी वित्तीय गतिविधियों पर जोखिम और प्रतिलाभों के बारे में अनिश्चितताएं खड़ी करके वित्तीय बाजारों का दम घोट देती हैं। तीसरी हैं - वित्तीय दमन की नीतियां जैसे उच्च मुद्रा स्फीतिगत कराघान, उच्च अपेक्षित आरक्षित निधि अनुपात, सब्सीडी प्राप्त या निर्देशित ऋण कार्यक्रम, ऋण की राशनिंग तथा जमा और ऋणों की ब्याज दरों पर उच्चतम सीमा वित्तीय बाजार के विकास को बाधा पहुंचाते हैं।

6.3 जैसा कि अध्ययन III में उल्लेख किया गया है सुधारों का क्रम निर्धारण तथा उनकी गति भी मौद्रिक तथा वित्तीय स्थिरता की सुरक्षा के लिए तथा उनके प्रतिगमन से बचने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। जहां वर्तमान शोध वित्तीय बाजारों के सुधारों के सर्वाधिक दक्ष पथ को ढूंढ़ने में समर्थ नहीं हो पाई है, परंतु जिन मुद्दों पर व्यापक रूप से चर्चा हुई है उनमें शामिल हैं - विकास की बैंक आधारित प्रणाली को अपनाया जाना चाहिए या बाजार आधारित प्रणाली को? क्या वित्तीय बाजार के विभिन्न घटकों के क्रमबद्ध सुधार को अपनाया जाना चाहिए तथा क्या पूंजी खाते का उदारीकरण घरेलू वित्तीय बाजार के सुधार से पहले किया जाना चाहिए।

6.4 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना से लेकर वित्तीय क्षेत्र तथा वित्तीय बाजार के विकास में रिज़र्व बैंक की भूमिका में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। प्राथमिक रूप से बैंक आधारित वित्तीय प्रणाली से निकल कर भारत में वित्तीय प्रणाली का विकास योजनाबद्ध विकास के प्रयासों का वित्तपोषण करने के रूप में हुआ है। इस उद्देश्य के लिए संस्थागत विकास ने रिज़र्व बैंक का पर्याप्त ध्यान आकृष्ट किया। अल्पावधिक वित्तपोषण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यापक आधार वाले बैंक क्षेत्र के विकास के अनुपूरक के रूप में दीर्घावधिक वित्तपोषण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए रिज़र्व बैंक ने विशिष्ट विकास वित्त संस्थाओं की स्थापना की। 1990 के बाद के दशक के प्रारंभ से वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की शुरुआत ने वित्तीय बाजारों के विकास के लिए मजबूत प्रोत्साहन प्रदान किया। बाजार आधारित मौद्रिक नीति संबंधी लिखतों की शुरुआत, पूंजीगत नियंत्रणों का उदारीकरण तथा 1990 के बाद के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व के बाजारों के साथ समेकन ने देश को संभावित उद्वेगशील पूंजी के आगमों से मौद्रिक तथा विदेशी मुद्रा विनिमय दर के प्रबंधन में रिज़र्व बैंक के लिए नई चुनौतियों और द्विविधाओं से परिचित कराया। इसने वित्तीय बाजारों में गहनता तथा स्थिरता सुनिश्चित करने की दिशा में नए सिरे से बल देने की मांग की ।

6.5 इस अध्याय का उद्देश्य भारत में वित्तीय बाजारों के निर्माण और विकास में विशषकर बढ़ते हुए वैश्वीकरण और उदारीकरण के संदर्भ में रिज़र्व बैंक की बदलती हुई भूमिका का पता लगाना है। इसके भाग 1 में मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा (फोरेक्स) बाजारों, जो रिज़र्व बैंक द्वारा नियंत्रित होते हैं, पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए भारत में वित्तीय बाजारों की संरचना और उनके विकास के बारे में चर्चा की गई है। समय के साथ विकसित होने वाले इन बाजारों तथा उनकी वर्तमान में हैसियत की समीक्षा की गई है। भाग II में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा विश्व व्यापीकरण के संदर्भ में वित्तीय बाजारों के विकास में रिज़र्व बैंक की बदलती हुई भूमिका को स्पष्ट किया गया है तथा उपयुक्त संस्थागत तथा कानूनी सुधारों की महत्ता को रेखांकित किया गया है। अंतिम भाग में अंतिम निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

I. वित्तीय बाजारों का विकास : भारतीय अनुभव

6.6 भारत के पास वित्तीय मध्यस्थता का एक दीर्घ और उतार-चढ़ाव भरा इतिहास है। 20 वीं शताब्दी के शुरू होने तक भारत में बीमा कंपनियां (जीवन तथा साधारण) तथा एक कार्यरत स्टॉक एक्सचेंज था। 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना से भी पहले देश में मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजार थे। तथापि इन बाजारों के पास लिखतों की कमी थी, खिलाड़ियों की संख्या सीमित थी तथा उनमें गहराई की कमी थी, इसका आंशिक कारण था कि भारतीय वित्तीय प्रणाली मुख्यतः बैंक आधारित प्रणाली थी।

6.7 स्वातंत्रोत्तर अवधि के दौरान वित्तीय संस्थाओं तथा बाजारों के विकास का पथ मुख्यतः भारत में अपनाए गए योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया से प्रेरित था जिसमें बचतों के संग्रहण तथा योजना की प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए निवेश को सरणीबद्ध करना था। 1947 में आजादी के समय, भारत में सुविकसित बैंकिंग प्रणाली थी। बैंक प्रधान वित्तीय विकास की रणनीति अपनाने का उद्देश्य था - क्षेत्रवार विशेषकर, कृषि और उद्योग की ऋण की आवश्यकताओं को पूरा करना । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रिज़र्व बैंक ने अपना ध्यान संस्थाओं के निर्माण के लिए विनियमन तथा विकास करने की प्रक्रिया-तंत्र पर केंद्रित किया तथा उद्योग और कृषि की अल्पावधिक कार्यकारी पूंजी संबंधी अपेक्षाओ को पूरा करने के लिए वाणिज्यिक बैंकिंग नेट वर्क का विस्तार किया गया। विशिष्ट विकास वित्त संस्थाएं (डीएफआइ) जैसे आइडीबीआइ, नाबार्ड, तथा सिडबी आदि, रिज़र्व बैंक के स्वामित्व की प्रधानता के साथ स्थापित की गईं जो उद्योग और कृषि की दीर्घावधिक वित्तपोषण की अपेक्षाओं को पूरा कर सकें। इन संस्थाओं की वृद्धि को सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से इन संस्थाओं को रियायती वित्त उपलब्ध कराने के लिए एक प्रणाली-तंत्र की स्थापना भी रिज़र्व बैंक द्वारा की गई।

6.8 इस प्रकार, 1990 के बाद के दशक तक संस्थागत विकास की उल्लेखनीय स्थापना के बावजूद, वित्तीय क्षेत्र का परिवेश गहन तथा व्यापक वित्तीय बाजारों के विकास के लिए अनुकूल नहीं था। वास्तव में इसका परिणाम हुआ अलग-अलग घटकीकृत तथा अल्प विकसित बाजारों की स्थापना, जिनमें लिखतों की कमी थी, तथा सहभागियों की संख्या सीमित थी। बैंक और वित्तीय संस्थाएं अत्यधिक विनियमित परिवेश में कार्य करती थीं जिन पर नियंत्रित ब्याज दरों की संरचना तथा ऋण प्रवाहों पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगे होते थे। अत्यधिक उच्च प्रारक्षित अपेक्षाएं थीं तथा उधार देने योग्य संसाधनों का काफी बड़ा भाग प्राथमिकता-प्राप्त और सरकारी क्षेत्र के लिए पूर्व-क्रय कर लिया जाता था। जहां मात्रात्मक प्रतिबंध का परिणाम निजी क्षेत्र के लिए ऋण की राशनिंग के रूप में हुआ, जहां ब्याज दर नियंत्रणों ने विधियों का उप-अभीष्टतम रूप में प्रयोग किया जाने लगा। इसका परिणाम हुआ निम्न स्तरों पर निवेश और वृद्धि। इनके साथ अन्य कारक थे, जैसे यथोचित लेखांकन, पारदर्शिता और विवेक सम्मत मानदंडों का अभाव। इसके परिणामस्वरूप बैंकिंग प्रणाली में भारी मात्रा में गैर निष्पादक आस्तियां (एनपीए) बन गईं। इसके कारण वित्तीय दबाव ने उत्पादकता और दक्षता में गिरावट के अलावा बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता में गिरावट आ गई। बैंक आधारित तथा अत्यधिक नियंत्रित व्यवस्था वित्तीय बाजार के विकास के लिए प्रतिकूल हो गई।

6.9 1991 के भुगतान संतुलन के संकट के संदर्भ में, वित्तीय प्रणाली संबंधी समिति (अध्यक्ष : एम. नरसिंहम, 1991) द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार भारत में एक व्यापक संरचनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्र के सुधार की प्रक्रिया शुरू की गई जो वित्तीय क्षेत्र के क्रमिक अपविनियमन तथा वित्तीय बाजार के विभिन्न घटकों के विकास और समेकन के लिए प्रस्थान-बिंदु सिद्ध हुए। उदारीकरण और वैश्वीकरण की बढ़ती हुई चुनौतियों को पूरा करने में समर्थ एक सुदृढ़, प्रतिस्पर्धी तथा दक्ष बैंकिंग प्रणाली बनाने के लिए वित्तीय प्रणाली के कार्यकलापों को सुदृढ़ करने के लिए उपाय शुरू किए गए। वित्तीय क्षेत्र में किए गए कुछ संरचनात्मक परिवर्तनों में निम्नलिखित शामिल हैं । प्रवेश संबंधी प्रतिबंधों को हटाना, अधिकांश घटकों में वित्तीय आस्तियों के मुक्त रूप से मूल्य निर्धारण की शुरुआत, परिमाण संबंधी प्रतिबंधों में ढील, प्रतिभूतियों को जारी करने/ नए ऋणों को जारी करने की नई पद्धतियां, लिखतों की संख्या में वृद्धि, बढ़ी हुई सहभागिता, लेनदेन (व्यापार) समाशोधन तथा निपटान संव्यवहारों में सुधार, सूचनाओं के आदान-प्रदान में सुधार, पारदर्शिता तथा प्रकटीकरण संबंधी संव्यवहार। इसके साथ ही, 1992-93 से पूंजी-पर्याप्तता संबंधी अपेक्षाओं, आस्ति-वर्गीकरण तथा

प्रावधानीकरण संबंधी मानदंडों, आस्ति-देयता प्रबंध प्रणालियां तथा जोखिम-प्रबंध प्रणालियों को स्थापित करके बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए उपाय शुरू किए गए। इन उपायों ने बैंकिंग क्षेत्र में बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा मुद्रा, विदेशी मुद्रा और सरकारी प्रतिभूति बाजारों में समेकन की दिशा में योगदान किया । और वे वित्तीय क्षेत्र की समग्र आविनियमन प्रक्रिया से समन्वित हो गए।

भारतीय रिज़र्व बैंक की भूमिका

6.10 वित्तीय बाजारों में रिज़र्व बैंक की भूमिका को महत्व प्राप्त हो गया। जिसके निम्नलिखित कारण हैं । पहला, वित्तीय बाजारों में रिज़र्व बैंक की प्राथमिक रूचि इसके मौद्रिक नीति के संप्रेषण में इसकी महत्ता के कारण है। परिचालन की दृष्टि से मौद्रिक नीति के संचालन के लिए मुद्रा बाजार के परिचालन तथा अप्रत्यक्ष लिखतों पर निर्भरता ने मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों के विकास को आवश्यक बना दिया। दूसरा, वित्तीय स्थिरता रिज़र्व बैंक के लिए एक बढ़ता हुआ महत्वपूर्ण मुद्दा हो सकता है, जिसका परिणाम हुआ वित्तीय बाजार के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया । मुद्रा बाजार वह केंद्र बिंदु है, जिसके कारण रिज़र्व बैंक को हस्तक्षेप करना पड़ता है - अल्पावधिक चलनिधि प्रवाहों को संतुलित बनाना। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका संबंध अल्पावधिक चलनिधि प्रवाहों को प्रति संतुलित करता है, क्योंकि इसका विदेशी मुद्रा बाजार के साथ इसके संबंध है। सरकारी प्रतिभूति बाजार कई कारणों से पूरे ऋण बाजार का केंद्र बिंदु बन गया है; पहला, सरकार का राजकोषीय घाटा - केंद्र और राज्यों - दोनों का, निरंतर काफी उच्च बना हुआ है, जिसका परिणाम यह हुआ कि केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा बाजार से भारी उधार लिया जाता है। क्योंकि कंपनी ऋण बाजार अभी भी विकास की नवजात अवस्था में है, सरकारी प्रतिभूति बाजार ऋण बाजार का सबसे बड़ा घटक है। दूसरे, यह अन्य ऋण बाजार की लिखतों के मूल्य निर्धारण के लिए बेंचमार्क का कार्य करता है। तीसरा, यह मौद्रिक नीति के लिए एक दक्ष संप्रेषण सरणि प्रदान करता है। विदेशी मुद्रा बाजार के विकास के लिए रिज़र्व बैंक का ध्यान मुख्यतः विनिमय दर को स्थिरता प्रदान करने की ओर है।

6.11 वित्तीय बाजारों में रिज़र्व बैंक का हक कई कारणों से है - पहला, रिज़र्व बैंक मौद्रिक प्राधिकारी के रूप में मौद्रिक नीति के संप्रेषण के लिए सर्वाधिक रूप से जुड़ा है। दूसरा, यह माना जाना चाहिए कि भारत न तो आबद्ध अर्थव्यवस्था है और न ही मुक्त अर्थव्यवस्था। वास्तव में, भारत एक खुलती हुई अर्थव्यवस्था है, तथा इसके खुलने की प्रक्रिया का सावधानीपूर्वक प्रबंधन तथा स्थिरता वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है (रेड्डी 2005)। तीसरे, चूंकि बाजार कानूनों, विनियमनों तथा नीतियों द्वारा गत अवधि में अनेक प्रकारों से दमित थे, अतः रिज़र्व बैंक कानूनी परिवर्तनों, प्रौद्योगिकी और संस्थागत विकास, तथा बाजार की व्यष्टिगत संरचना में गत्यात्मक सुधार लाकर एक समर्थक परिवेश निर्मित करके बाजारों के विकास को सुविधाजनक बनाता रहा है। चौथे, रिज़र्व बैंक के चार्टर के हिसाब से कुछ वित्तीय बाजारों का विनियमन अपेक्षित है। यह मुद्रा बाजार से संबंधित है जोकि मौद्रिक नीति, सरकारी प्रतिभूति बाजार जो कि आय वक्र का विकास करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो, तथा विदेशी मुद्रा बाजार जो विदेशी मुद्रा बाजार का अंतरण भाग है, का केंद्र है। प्रतिभूति संविदा विनियमन अधिनियम में संशोधनों तथा उसके अंतर्गत सरकारी अधिसूचनाओं ने जो रिज़र्व बैंक को इसका अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है, इस पहलू को रूपाकार देने में सहायता की है। पांचवें, उन्नत लिखतों के क्रमिक विकास तथा बाजार के संव्यवहारों में नवोन्मेष के साथ प्रौद्योगिकीगत संरचना वित्तीय बाजारों के सुधारों का एक अपरिहार्य अंग बन गया है। अतः रिज़र्व बैंक ने भुगतान एवं निपटान प्रणालियों, सुपुर्दगी बनाम भुगतान (डीवीपी) तथा इलैक्ट्रोनिक फंड ट्रान्सफर (इएफटी) जैसे क्षेत्रों में बाजार का विकास सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से एक उपयुक्त प्रौद्यागिकीगत बुनियादी संरचना के विकास में रिज़र्व बैंक ने काफी रूचि ली है। और अंतिम पर उतना ही महत्वपूर्ण, यह कारण है कि आधुनिक वित्तीय बाजार जटिल है। अतः रिज़र्व बैंक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आपको इसके लिए तैयार करे तथा निरंतर अद्यतन करता रहे कि वह अपने विकासात्मक तथा विनियामक भूमिकाएं दक्षतापूर्वक निभाता रहे। इस प्रक्रिया में सर्वोत्तम संव्यवहारों का पता लगाने के लिए विश्व के अन्य खिलाड़ियों के साथ निरंतर संपर्क बनाए रखना, भारतीय बाजारों में विद्यमान परंपराओं का बेंचमार्क बनाना, भारत की अनोखी देशी परिस्थितियों के ढांचे के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय मानकों की ओर बढ़ने के लिए अंतरालों को पहचानना तथा आवश्यक उपाय करना शामिल है।

भारत में वित्तीय बाजारों की संरचना तथा वृद्धि

6.12 भारत में वित्तीय क्षेत्र में, वर्तमान में, वित्तीय संस्थाएं, वित्तीय बाजार और वित्तीय लिखतें शामिल हैं। भारत में वित्तीय बाजार के विभिन्न घटक हैं - ऋण बाजार, मुद्रा बाजार, सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार, पूंजी बाजार तथा बीमा बाजार। जहां, मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजार का विनियमन रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है, वहीं, पूंजी बाजार भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) के अंतर्गत आता है, तथा बीमा बाजार का विनियमन बीमा विनियामक तथा विकास प्राधिकरण (इर्डा) द्वारा किया जाता है। इन बाजारों के विकास के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा वर्षों से तथा सेबी द्वारा (1990 के दौरान) अनेक उपाय किए गए हैं।

6.13 1990 के बाद के दशक तक वित्तीय बाजारों के अपेक्षाकृत कम विकसित स्वरूप के कारण फर्में अपनी निधियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी सीमा तक वित्तीय मध्यस्थों पर निर्भर थीं। विभाजित बाजार की विद्यमानता मौद्रिक नीति की भावनाओं / धड़कनों के संप्रेषण को छिपाने की प्रवृत्ति रखती थीं जिसका परिणाम यह हुआ कि संसाधनों का अभीष्टतम आबंटन नहीं हो पाता था (कामेसम 2001)।

6.14 इस प्रकार भारत में वित्तीय बाजार का सुधार एक हाल की घटना है तथा यह समग्र वित्तीय क्षेत्र और 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों में शुरू किए गए संरचनागत सुधारों की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक बना । भारत में वित्तीय बाजार के सुधारों ने सुप्रसिद्ध दृष्टिकोण को अपनाया । वास्तव में, सुधारों की प्रक्रिया 1980 के बाद के दशक के मध्य से भारत में मौद्रिक प्रणाली की कार्य-पद्धति की समीक्षा संबंधी समिति, 1985 (अध्यक्ष : सुखमय चक्रवर्ती) तथा मुद्रा बाजार संबंधी कार्य दल 1987 (अध्यक्ष : एन.वागुल) की सिफारिशों के अनुसरण में किए गए अनेक उपायों से प्रारंभ हुई थी। तथापि इस प्रक्रिया को गति 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में मिली जब वित्तीय बाजार के सभी घटकों (मुद्रा, विदेशी मुद्रा तथा सरकारी प्रतिभूति) में व्यापक दायरे में सुधार किए गए। भारत में बाजारों के सुधार की प्रक्रिया चरणबद्ध या क्रमिक रूप में अपनाई गई है ताकि अस्थिरकारी प्रभावों से बचा जा सके।

6.15 भारत में वित्तीय क्षेत्र तथा बाजार सुधारों के प्रति सामान्य दृष्टिकोण पारदर्शी, समन्वयवादी तथा परामर्शी प्रक्रिया वाला रहा है, जिसका उद्देश्य विभिन्न संभावित द्विविधाओं को समाप्त करना था। स्वयं सुधार की प्रक्रिया की विशेषता सतर्कता रही जिसमें स्थिरता को बनाए रखने के उपायों को क्रम-वार, सावधानीपूर्वक बनाने, मौद्रिक उपायों को परस्पर लागू करने तथा संगतता एवं अन्य नीतियों के साथ अनुपूरकता सुनिश्चित करने पर बल दिया गया था । इसके अलावा, वित्तीय बाजारों में सुधार समग्र मौद्रिक नीति के ढांचे के अंदर-अंदर लिए गए तथा उनका समन्वय मुद्रा तथा विदेशी मुद्रा बाजारों के सुधारों के साथ तालमेल बिठाते हुए किया गया। अनेक प्रमुख सुधारों को अनेक चरणों में लागू किया गया है, उनके संप्रेषण की अनुमति देते हुए, ताकि वे बाजार की स्थितियों, या सहभागियों के किसी अन्य समूह या आम तौर पर वित्तीय प्रणाली को अस्थिर न बना दें (रेड्डी 2005)।

6.16 भारत में मुद्रा तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार तीन प्रमुख गतिविधियों से प्रेरित था। पहली, तदर्थ खजाना बिलों के जरिए सरकारी घाटे के स्वत: वित्तपोषण (जिसमें दिसंबर 1974 से 4.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की स्थायी कूपन दर लागू होती थी) के स्थान पर 1997 में बैंक दर से सहबद्ध ब्याज दर पर अर्थोपाय अग्रिमों (डब्ल्यूएमए) का लाया जाना था जिसके कारण राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण बाजार बडी मात्रा में किया जाने लगा। इसने सरकारी प्रतिभूति बाजार के विकास को गति प्रदान की। दूसरी, एक समर्थकारी संस्थागत और कानूनी ढांचा तथा मौद्रिक नियंत्रण के अप्रत्यक्ष लिखतों की व्यूह रचना, जैसे बैंक दर, जिसे अप्रैल 1997 को पुनः सक्रिय किया गया, नीलामियों को मिलाने की रणनीति, निजी स्थानन, सरकारी प्रतिभूतियों में 1998-99 से खुले बाजार के परिचालन, तथा चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) (जो जून 2000 से शुरू की गयी) ने वित्तीय बाजार के विकास में उल्लेखनीय रूप से योगदान किया (रेड्डी 2000)। तीसरी, एक उपयुक्त कानूनी, संस्थागत, प्रौद्योगिकीय तथा विनियामक ढांचे की स्थापना ने वित्तीय बाजार के सभी विभिन्न घटकों में चलनिधि तथा पारदर्शिता बढ़ाने में योगदान किया है।

भारत में वित्तीय बाजारों की स्थिति

6.17 भारत में वित्तीय बाजारों का विकास की चरणबद्ध प्रक्रिया रही है, तथा जो मोटे तौर पर सुधार से पूर्व (अर्थात 1990 के दशक से पूर्व जब बाजार संप्रेषण के दौर में थे) तथा सुधार की अवधि या सुधारोत्तर अवधि (जब से 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों से जब बाजार में भारी मात्रा और तेजी से सुधार हुए)।

मुद्रा बाजार

6.18 मुद्रा बाजार वित्तीय प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह निधियों की अल्पावधिक मांग तथा उनके लिए आपूर्ति करने के संतुलन को बनाए रखने के लिए आधार प्रदान करता है और इस प्रकार मौद्रिक नीति के संचालन को सुविधाजनक बनाता है। यह एक साल तक की मीयादवाली अल्पावधिक निधियों के लिए बाजार है तथा इसमें वे वित्तीय लिखत शामिल हैं जो मुद्रा के समीपतम एवज़ी हैं। मुद्रा बाजार से आम तौर पर तीन कार्य करने अपेक्षित हैं। (i) यह अल्पावधिक निधियों की मांग और आपूर्ति के अंतराल को दूर करने के लिए संतुलन प्रदान करता है, (ii) यह अर्थव्यवस्था में चलनिधि तथा ब्याज दरों के सामान्य स्तरों को प्रमाणित करने के लिए केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप का केंद्र बिंदु बनता है, तथा यह अल्पावधिक निधियों के प्रदानकर्ता तथा उपयोगकर्ता को एक दक्ष बाजार में स्पष्ट मूल्य पर उधार लेने तथा निवेश करने के लिए तर्क-सम्मत पहुंच प्रदान करता है (वाघुल 1987)।

6.19 अल्पावधिक मुद्रा बाजार तथा दीर्घावधि पूंजी बाजार के बीच कोई विशेष उल्लेखनीय विभेद नहीं हैं और वस्तुतः इन दोनों बाजारों के बीच आंतरिक संपर्क हैं क्योंकि दोनों बाजारों में लिखतों की व्यूह रचना अनिवार्यतः एक निरंतरता बनाए रखती है (वाघुल 1987) । रिज़र्व बैंक मुद्रा बाजार सबसे महत्वपूर्ण घटक है। मौद्रिक नीति के

संचालन में मुद्रा बाजार के निहितार्थों के कारण मुद्रा बाजार रिज़र्व बैंक के प्रत्यक्ष विनियमन के अंतर्गत आता है। मुद्रा बाजार में रिज़र्व बैंक के परिचालनों का प्राथमिक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अल्पावधिक उधार देने की दरें तथा चलनिधि को उन स्तरों पर बनाए रखा जाए जोकि समग्र मौद्रिक नीति के उद्देश्यों से मेल खाते हों जैसे मूल्य-स्थिरता बनाए रखना, अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के ऋण के पर्याप्त प्रवाह सुनिश्चित करना, तथा वित्तीय बाजारों में व्यवस्थित स्थिति बनाए रखना । प्रणाली में चलनिधि और ब्याज की दरें रिज़र्व बैंक द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में निहित विभिन्न साधनों जैसे नकदी प्रारक्षित अनुपात, स्थायी सुविधाएं/पुनर्वित्त योजनाएं, रेपो तथा रिवर्स रेपो लेनदेन, बैंक दरों में परिवर्तन, खुले बाजार के परिचालन और कभी-कभी विदेशी मुद्रा स्वैप परिचालनों के माध्यमों का उपयोग करके इस क्षेत्र को प्रभावित करता है। मौद्रिक नीति की प्रक्रिया में बाजार की भूमिका को मानते हुए रिज़र्व बैंक ने प्रणाली में विद्यमान चलनिधि पर बेहतर नियंत्रण रखने तथा ब्याज दर के संकेतक देने के लिए दक्ष प्रणाली-तंत्र बनाने के लिए मुद्रा बाजार की लिखतों को निरंतर बेहतर बनाए रखने में सक्रिय रूचि ली है।

सुधार-पूर्व की अवधि

(i) 1930 से 1960 के दशक तक

6.20 इस अवधि के दौरान भारतीय मुद्रा बाजार में लिखतों की कमी, बाजार की संरचना में गहनता तथा विविधता की कमी, देखी गई। अंतरबैंक मांग मुद्रा बाजार भारतीय मुद्रा बाजार का मूल था। 1935 में रिज़र्व बैंक के निर्माण से पहले, मुद्रा बाजार में दो पर्याप्त भिन्न क्षेत्र थे। अर्थात् संगठित और असंगठित क्षेत्र (एसबीआई, 2003)। जहां संगठित क्षेत्र में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया - 1935 तक अर्ध केंद्रीय बैंक, भारतीय जाइंट स्टॉक बैंक तथा विदेशी मुद्रा बैंक, देशी बैंकर जैसे श्राफ, मनीलेंडर, चेट्टी, मुल्तानी निधियां, चिट फंड आदि असंगठित क्षेत्र में आती थीं। सहकारी ऋण संस्थाओं ने इन दोनों क्षेत्रों के बीच में मध्यस्थक की स्थिति प्राप्त की हुई थी। इंपीरियल बैंक जो देश का सबसे अग्रणी वाणिज्यिक बैंक था, तथा कुछ अग्रणी भारतीय ज्वाइंट स्टॉक बैंक हुंडियों (आंतरिक विनियम बिलों) को बट्टे पर भुनाया करते थे। यह असंगठित क्षेत्र के लिए ऋण लिखत का मुख्य माध्यम था । जो इन दोनों क्षेत्रों के बीच एक मात्र संपर्क सूत्र था। एक उचित केंद्रीय बैंक के न होने के कारण मुद्रा बाजार में निधियों की मांग और आपूर्ति के बीच भारी असंतुलन था, मौसमी व्यस्त और कामकाज की मंदी के दौरान ब्याज की दरों में भारी असंतुलन था। तथापि, इंपीरियल बैंक मुद्रा बाजार को स्थिरता प्रदान नहीं कर सका, क्योंकि इसे सरकार से उच्च ब्याज दरों पर उधार लेना पड़ता था। तथापि, इंपीरियल बैंक ने मुद्रा बाजार को सहायता प्रदान की जिसमें उसने सरकार की भारी शेष राशियों का उपयोग किया जो इसकी इच्छा पर प्रयुक्त की जा सकती थीं, जो इसका प्रमुख निवेश योग्य संसाधन बना।

6.21 इंपीरियल बैंक ने सांविधिक दृष्टि से न सही तो भी 1935 तक बैंकरों के बैंक के रूप में कार्य किया तथा अन्य बैंकों की (भारतीय और विदेशी मुद्रा - दोनों की शेष राशियों को रखा तथा उन्हें उनकी कठिनाइयों के दिनों में या मुद्रा की तंगी की स्थितियों में आर्थिक लाभ प्रदान किया। यह स्थिति 1935 के बाद भी उन क्षेत्रों में जारी रही जहां रिज़र्व बैंक ने अपने कार्यालय स्थापित नहीं किए थे। अग्रिम अक्सर सरकारी या अन्य गिल्ट प्रतिभूतियों की जमानत पर मांग ऋण के रूप में प्रदान किए जाते थे, यद्यपि कभी-कभी ये भी ओवरड्राफ्ट के स्वरूप के होते थे।

6.22 बैंक दर वह मुख्य उधार दर होती थी जिस पर इंपीरियल बैंक आम तौर पर सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत पर उधार दिया करता था। इस दर का निर्धारण इंपीरियल बैंक के केंद्रीय बोर्ड की समिति द्वारा किया जाता था तथा यह धन की मांग पर निर्भर करता था जोकि प्रायः व्यापार, विशेषकर विदेश व्यापार, कच्चे माल जैसे खाद्यान्न, कपास,जूट और जूट के निर्मित वस्तुओं की व्यापारगत मांग द्वारा निर्धारित किया जाता था । ऋणों पर बैंक दर सहित ब्याज की दरें, इस व्यापार के उतार-चढ़ाव के अनुसार घटती बढ़ती रहती थीं। इंपीरियल बैंक तब भी जब देयताओं के प्रति इसका नकदी अनुपात निम्न पाया जाता था जो चलनिधि का संकेतक था। बैंक दर के अलावा, इंपीरियल बैंक आवधिक रूप से हुंडी की दरें घोषित किया करता था।जो प्रायः बैंक दर के समकक्ष या इससे थोड़ी सी उच्च होती थी। इंपीरियल बैंक द्वारा अपने अग्रिमों पर वसूली की जानेवाली दरों तथा हुंडियों पर बट्टे की दरों के माध्यम से, तथा इसकी इच्छा से या वित्तीय सहायता प्रदान करने से मना करने पर यह ऋण के प्रावधान तथा मुद्रा बाजार की दरों को काफी सीमा तक प्रभावित किया करता था।

6.23 काफी पहले अर्थात् 1931 में, भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931) ने भारतीय मुद्रा बाजार के इन दोनों घटकों के समेकन की आवश्यकता को रेखांकित किया। इसमें कुछ शर्तों जैसे न्यूनतम पूंजी और प्रारक्षित निधि, कारोबार का स्वरूप, खातों की लेखा परीक्षित कराने आदि को पूरी करने पर देशी बैंकों को रिज़र्व बैंक के साथ जोड़ने की सिफारिश की थी । बाद में, अगस्त 1937 में रिज़र्व बैंक ने भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची के अंतर्गत बैंकिंग कारोबार करनेवाली देशी बैंकरों को शामिल करने के लिए एक योजना बनाई ।

6.24 1935 में रिज़र्व बैंक के गठन के पश्चात् संगठित बाजार ने जिसमें रिज़र्व बैंक, इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया, विदेशी बैंक तथा भारतीय संयुक्त स्टॉक बैंक, शामिल थे तथा अर्ध सरकारी निकायों तथा बड़े आकार की संयुक्त स्टॉक कंपनियों ने भी मुद्रा बाजार में उधारदाता के रूप में भाग लिया। इनके द्वारा उधार दी गई राशि को

आम तौर पर 'हाउस मनी' कहा जाता था (भारिबैं.1958)। वित्तीय मध्यस्थक जैसे मांग ऋण ब्रोकरों, आम वित्त तथा स्टॉक ब्रोकरों ने भी बाजार में भाग लिया। हालांकि मांग बाजार में लेनदेन की गई निधियों की मात्रा बैंकों की जमा राशियों के संसाधनों की तुलना में बड़ी नहीं थी। तथापि यह मुद्रा बाजार में सर्वाधिक संवेदनशील घटक था। इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया ने मांग मुद्रा बाजार में भाग नहीं लिया, परंतु अन्य बैंकों ने इससे ऋण और अग्रिम लिए। तथापि बाद में बैंकों ने उत्तरोत्तर रूप में अपने आर्थिक निभाव के लिए रिज़र्व बैंक की ओर रुख किया। मांग मुद्रा बाजार के अलावा इस बाजार में और कोई महत्वपूर्ण घटक नहीं था।

6.25 अप्रैल 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक के गठन के साथ ही, बैंक दर के निर्धारण का कार्य इंपीरियल बैंक से इसमें ले लिया। 4 जुलाई 1935 को अर्थात् उस दिन से पहले जब अनुसूचित बैंकों को अपनी सांविधिक जमा राशियां रिज़र्व बैंक के पास जमा करानी थीं, रिज़र्व बैंक ने पहली बार 3.5 प्रतिशत की बैंक दर की आधिकारिक रूप से घोषणा की । यह वह मानक दर थी जिस पर रिज़र्व बैंक विनिमय बिल या अन्य पात्र वाणिज्यिक पत्रों को खरीदने या भुनाने के लिए तैयार था। बाद में इंपीरियल बैंक की आधिकारिक दर को इंपीरियल बैंक अग्रिम दर कहा जाने लगा। जो इंपीरियल बैंक की हुंडी दर से भिन्न थी, जो सरकारी प्रतिभूतियों पर अग्रिमों के लिए दर थी तथा उन अन्य अग्रिमों पर ब्याज की गणना करने के लिए आधार दर थी जिस पर ब्याज की सचल दर लगाई जानी थी। आम तौर पर अर्थव्यवस्था की तथा विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र की सेवा करने के लिए अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति ने यह सिफारिश की थी कि इंपीरियल बैंक का अधिग्रहण करके एक सरकार की सहभागिता वाले तथा सरकार द्वारा प्रायोजित बैंक के रूप में गठन किया जाए तथा पूर्ववर्ती सरकारी स्वामित्व वाले तथा सरकार से सम्बद्ध बैंकों का इसके साथ समेकन कर दिया जाए। तदनुसार मई 1955 में संसद में एक अधिनियम पारित किया गया तथा 1 जुलाई 1955 को भारतीय स्टेट बैंक का गठन किया गया।

6.26 हालांकि, रिज़र्व बैंक को विधान के अंतर्गत मौद्रिक नीति की सामान्य लिखतों का उपयोग करने की शक्तियां प्राप्त थीं, परंतु मौद्रिक नियंत्रण के लिए लिखतों का चयन करने का विकल्प मुद्रा बाजार की संरचनागत विशेषताओं के कारण सीमित कर दिया गया था। भारत में मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण पहलू था - मुद्रा तथा ऋण की मांग का मौसमीपन जो मोटे तौर पर कृषि के मौसमों के अनुसार चलता था। प्रसंगवश, सरकार के खातों की लेखा बंदी वित्त वर्ष के अंत में मार्च में होने से भी मुद्रा बाजार में मौसमीपन के तत्व को बढ़ाने में मदद की ।

6.27 भारत में मुद्रा बाजार की संरचना भले ही, शिथिल या ढीली रही हो, परंतु पूर्णतः असमन्वित नहीं थी (भा.रि.बैं.1958) । देशी बैंकरों ने इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया तथा अन्य वाणिज्यिक बैंकों से पुनर्भुनाई की सुविधाओं का लाभ उठाया, जिनकी इसके परिणाम स्वरूप रिज़र्व बैंक तक पहुंच हो गई। देशी मुद्रा बाजारों की ओर से संगठित बाजार के संसाधनों का सहारा सामान्यतः व्यस्त मौसम के दौरान लिया जाता था, जब फसलों की कटाई होती थी तथा वे उत्पादक के स्थान से थोक विक्रेता के पास आती थीं। रिज़र्व की स्थापना के समय के आसपास असंगठित मुद्रा बाजार का घटक सबसे महत्वपूर्ण घटक था जो कुल लेनदेन का 90 प्रतिशत बैठता था। तब से सकल की दृष्टि से इसकी महत्ता काफी कम हो गई। परंतु कुछ क्षेत्रों जैसे कृषि, खुदरा व्यापार, छोटे उधारकर्ताओं के विभिन्न वर्गों तथा कुछ सीमा तक लघु उद्योगों के लिए यह बाजार संसाधनों का महत्वपूर्ण स्रोत बना रहा। इसके मुख्य लाभ थे - परिचालनों में नमनीयता, तथा उधारकर्ता द्वारा सहज पहुंच। परंतु ये लाभ ब्याज की उन ऊंची दरों के कारण हवा हो गए जिन पर ये संसाधन उधारकर्ताओं को उपलब्ध कराए जाते थे। अतः उस समय मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था- संगठित क्षेत्र से इन क्षेत्रों के लिए ऋण का प्रवाह सुविधाजनक बनाने के लिए पद्धतियां विकसित करना तथा इसे तर्क-संमत शर्तों पर उपलब्ध कराना ।

6.28 बिलों की पुनर्भुनाई ऋण नियंत्रण की सबसे महत्वपूर्ण लिखतें थीं तथा भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जाँच समिति (1931) ने वाणिज्यिक बिलों के बाजार के शीघ्र गठन की सिफारिश की थी। परंतु युद्ध तथा देश के विभाजन से होने वाली कठिनाइयों के मद्देनजर 1952 की शुरुआत तक रिज़र्व बैंक इस दिशा में कोई भी कदम नहीं उठा सका। बिल बाजार योजना अंततः 16 जनवरी 1952 को शुरू की गई। इस योजना के अंतर्गत रिज़र्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों को उनके वचन पत्रों या उनके अपने घटकों के 90 दिनों के मीयादी बिल या वचन पत्र (प्रोमसरी नोटों) की जमानत पर मांग ऋणों के रूप में अग्रिम उपलब्ध कराए। मुख्य रूप से यह बैंकों को आर्थिक निभाव उपलब्ध कराने की एक योजना थी। तथापि यह योजना वास्तविक बिलों के लिए एक बाजार का विकास करने में सफल नहीं हुई।

6.29 अल्पावधिक नियंत्रण उपायों की मंशा व्यस्त मौसम के दौरान बैंकों को अस्थायी आर्थिक निभाव की राशि तथा लागत को विनियमित करना तथा आवश्यक वस्तुओं का भंडार बनाए रखना था । अल्पावधिक नियंत्रण के लिए वणिज्यिक बैंकों की रिज़र्व बैंक तक पहुंच को निवल चलनिधि अनुपात प्रणाली[1] (एनएलआर) द्वारा विनियमित किया जाता था । दीर्घावधि नियंत्रण उपायों का उद्देश्य था ऋण के प्रवाहों को तथा विभिन्न क्षेत्रों के लिए ऋण की लागत को अपेक्षित दिशा में मोड़ना ।

6.30 वर्षों से रिज़र्व बैंक ने अपने ऋणों और खुले बाजार के परिचालनों से आम तौर पर ब्याज दरों में तथा विशेष तौर पर मांग मुद्रा एवं बाजार बिल दरों में काफी सीमा तक ब्याज की दरों के स्तरों को घटाने तथा साथ ही ब्याज दरों में मौसमी घटबढ़ को, जो कि रिजर्व बैंक की स्थापना से पहले भारतीय मुद्रा बाजार की एक मुख्य विशेषता थी, कम करने में सफल हुआ था।

(ii) 1970 से 1980 के दशक के दौरान

6.31 1970 के बाद के दशक से 1980 के बाद तक के दशक के बीच की अवधि में भी कम चलनिधि, लिखतों की कमी तथा सहभागियों की सीमित संख्या पाई जाती थी। इस अवधि के दौरान भारतीय मुद्रा बाजार की मुख्य विशेषताएं थीं -

(क) संकीर्ण आधार तथा सीमित संख्या में सहभागियों वाले सीमित बाजार - बैंक और दो अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं। बाजार में प्रवेश कठोरतापूर्वक नियंत्रित किया जाता था। इसके अलावा, कुछ बड़े उधारदाता तथा भारी संख्या में उधारकर्ताओं के साथ असंतुलित बाजार । बाजार में ऐसे सहभागियों की कमी थी जो उधार लेने और देने के बीच विकल्प देकर एक सक्रिय बाजार का निर्माण कर सकते।

(ख) बाजार का समग्र आकार अर्थव्यवस्था के आकार की तुलना में बहुत छोटा था । समग्र लेनदेन बैंक जमाराशियों का मात्र 3 से 5 प्रतिशत बनता था।

(ग) बाजार में लिखतों की कमी थी तथा लेनदेन प्रायः रात्रिभर की मांग तथा अल्प सूचना (15 दिनों तक के लिए) अंतरबैंक जमाराशियां / ऋण, रेपो मार्केट तथा बिल पुनर्भुनाई तक ही सीमित थे।

(घ) बाजार में ब्याज दरें भी कठोरतापूर्वक विनियमित तथा नियंत्रित होती थीं (भारतीय बैंक संघ (आईबीए) की मध्यस्थता के माध्यम से सहभागियों के बीच स्वैच्छिक रूप में हुए करार द्वारा) । तथापि चलनिधि की तंगी की स्थिति में निर्धारित दरों का कठोरतापूर्वक पालन नहीं किया जाता था और अधिकतर उन्हें भंग किया जाता रहता था (वाघुल 1987)।

6.32 उपर्युक्त विशेषताओं के कारण असंगठित मुद्रा बाजार क्षेत्रवार वित्तपोषण के अंतरालों को पूरा किया करता था (अर्थात् संगठित वित्तीय प्रणाली में असंतुष्ट उधारकर्ताओं की अपेक्षाओं की पूर्ति)। असंगठित क्षेत्र में ब्याज दरें संगठित क्षेत्र की ब्याज दरों की तुलना में उच्चतर तथा बाजार से अधिक संबद्ध थीं। मांग मुद्रा बाजार - जो प्रमुख बाजार था - पूर्णतः एक अंतरबैंक बाजार 1971 तक था जब यूटीआई और एलआईसी को बाजार में भाग लेने की अनुमति दी गई। जहां वाणिज्यिक तथा सहकारी बैंकों ने उधारकर्ता और उधारदाता दोनों रूपों में भाग लिया, वहीं एलआईसी और यूटीआई, जिनके पास अल्पावधिक सचल निधियां काफी मात्रा में थीं, को बाजार में निधियों की आपूर्ति को बढ़ाने के लिए उधार देने की अनुमति दी गई। रात्रिभर के लिए मांग/मीयादी मुद्रा ने परंपरागत रूप में बैंकों को प्रारक्षित अपेक्षाओं को बनाए रखने में सहायता की थी। इस प्रकार 1970 और 1980 के बाद के दशकों में भारत में मांग मुद्रा बाजार बुनियादी तौर पर ''ओवर दि काउंटर मार्केट'' रहा। क्योंकि ब्रोकरों को बाजार में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। (मार्च 1978 तक, मांग मुद्रा संबंधी लेनदेन ब्रोकरों के माध्यम से किए जा सकते थे। तब से लेकर रिज़र्व बैंक द्वारा बैंकों को रोक दिया गया कि वे मांग मुद्रा बाजार के परिचालनों पर दलाली अदा न करें क्योंकि इसने जमाराशियों पर दलाली अदा करना बंद कर दिया था।

6.33 दिसंबर 1973 से पूर्व, मांग बाजार की दरें बाजार द्वारा मुक्त रूप से निर्धारित की जाती थीं, परंतु जैसे ही ये दरें 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की ऊंचाई पर पहुंच गईं और उसी स्तर पर बनी रहीं, आरबीआई ने इसमें हस्तक्षेप किया तथा बाजार में कुछ व्यवस्था लाई। क्योंकि यह महसूस किया गया कि लंबी अवधि तक उच्च ब्याज की दरें पूर्ण बैंकिंग प्रणाली के परिचालनों को विकृत कर देंगी तथा उधार की दरों को नियंत्रित संरचना के अंतर्गत योजनाबद्ध ऋण आबंटन के बुनियादी उद्देश्यों के प्रतिकूल होंगी। दिसंबर 1973 में आरबीआई द्वारा मांग मुद्रा पर 15 प्रतिशत की सीमा लगाई गई, तथापि यह उच्चतम सीमा चरणबद्ध रूप में मार्च 1978 तक घटाकर 8.5 प्रतिशत कर दी गई। मुद्रास्फीतिकारी दबावों के उभरने तथा 1979-80 में नियंत्रित ब्याज दरों के तेजी से बढ़ने के कारण अप्रैल 1980 में मांग मुद्रा पर ब्याज की दरों को 10 प्रतिशत तक बढ़ाना आवश्यक हो गया।

6.34 मांग मुद्रा बाजार में कारोबार की मात्रा बैंकों की औसत उधार राशियां, जो 1982-83 में रु. 573 करोड़ की थीं, 1985-86 तक बढ़कर रु. 1,067 करोड़ रु. की हो गई। अंतरबैंक मीयादी जमा/ऋण बाजार, जहां निधियां 14 दिनों से ज्यादा के लिए उधार दी जाती थीं, भी इतना ही कम विकसित था। इस बाजार के सहभागी वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक थे। बाजार में ब्याज दरें रिज़र्व बैंक के किसी निदेश से परिचालित नहीं होती थीं। तथापि आरबीआई ने अंतरबैंक लेनदेनों की उच्चतम दरें निश्चित की। चलनिधि की तंगी की अवधियों में बाजार में ब्याज दरों की उच्चतम सीमाएं भंग हो जाया करती थीं। जैसा कि

[1] निवल चलनिधि अनुपात (एनएलआर) बैंक की नकदी, रिजर्व बैंक के पास जमाशेष राशि, अधिसूचित बैंकों में चालू खाता जमाराशियां तथा सरकारी और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेश, इसमें से भारिबैंक, भा.स्टेबैंक तथा आइडीबीआइ से इसकी कुल उधारियों को घटाकर शेष राशि का इसकी कुल मांग और मीयादी देयताओं के प्रति अनुपात था।

मांग मुद्रा बाजार के मामले में होता था। इस बाजार में लेनदेनों की मात्रा 1985-86 में रु. 420 से रु.1,000 करोड़ के बीच रही।

6.35 सुविकसित मुद्रा बाजार में, खजाना बिल प्रायः मुद्रा बाजार के परिचालनों का अनिवार्य भाग होता है। तथापि भारतीय संदर्भ में, मुद्रा बाजार की लिखत के रूप में खज़ाना बिलों की भूमिका (सरकार द्वारा अल्पावधि उधार लेने की लिखत) कुछ ऐतिहासिक गतिविधियों के कारण काफी सीमा तक कम कर दी गई (वाघुल 1987) । पहला, अधिकांश खज़ाना बिलों का निर्माण जो सरकार के घाटे को दर्शाते हैं, भारी मात्रा में वर्षों तक बिना निधियन के पड़े रहे तथा अधिकांश खज़ाना बिल रिज़र्व बैंक द्वारा रखे गए। दूसरे, 91 दिवसीय खजाना बिलों पर बट्टा दर 1974 से 46 प्रतिशत पर अपरिवर्तित बनी रही। साथ ही यह दर अन्य अल्पावधिक दरों से पूर्णतः असमायोजित बनी रही। तीसरे, चूंकि ये बिल रिज़र्व बैंक द्वारा मुक्त रूप से पुनर्भुनाये जाते थे तथा पखवाड़े के औसत के रूप में नकदी प्रारक्षित अनुपात (सीआरआर) बनाये रखने की शर्त को देखते हुए बैंक खजाना बिल बाजार का उपयोग अनिवार्यतः एक से दो दिनों की बहुत अल्पावधि के लिए जमा करने हेतु किया करते थे। अतः खजाना बिलों में बैंकों के निवेशों में ये तीव्र तथा रिज़र्व बैंक के पास बैंकों की नकदी शेष राशियों में भारी और तीव्र उद्वेगशीलता रहती थी। उतार-चढ़ाव वाले घट-बढ़ पूर्णतः अनुत्पादक थे तथा मुद्रा प्रबंधन के लिए गलत संकेत देते थे। तदनुसार इन समस्याओं पर नियंत्रण पाने के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा दो उपाय किए गए। आस्ति खजाना बिलों को पुनः चलाना/घुमाना तथा अतिरिक्त जल्दी पुनर्भुनाई फीस लगाने की शुरुआत।

6.36 नवंबर 1970 में एक नई योजना बिल पुनर्भुनाई योजना के नाम से शुरू की गई जिसमें कई नई विशेषताएं थीं जिसके अंतर्गत रिज़र्व बैंक वास्तविक व्यापार बिलों की बैंक दर पर या इसके विवेक पर निर्दिष्ट दर पर पुनर्भुनाई करता था। वर्षों से यह पुनर्भुनाई सुविधा सीमित कर दी गई तथा यह विवेकानुसार उपलब्ध कराई गई। मुद्रा बाजार में दूसरी लिखत थी - सहभागिता प्रमाणपत्र (1970 में शुरू की गई) । परंतु ये दोनों ही महत्वपूर्ण नहीं थीं।

6.37 चक्रवर्ती समिति (1985) ऐसी पहली समिति थी जिसने भारतीय मुद्रा बाजार के विकास के लिए व्यापक सिफारिशें कीं। इसके बाद रिज़र्व बैंक द्वारा विशिष्ट रूप से मुद्रा बाजार को व्यापक तथा गहन बनाने के लिए विभिन्न पहलुओं की जांच करने के लिए गठित की गई थी। इन दो समितियों की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए कई नई पहलें शुरू की गई। जमा प्रमाणपत्र (सीडी) (1989 से जमा प्रमाणपत्र योजना शुरू की गई), वाणिज्यिक पत्र (सीपी 1989 से शुरू किया गया) अंतरबैंक सहभागिता प्रमाणपत्र (जोखिम सहित तथा जोखिम रहित रूप में) शुरू किए गए ताकि लिखतों का दायरा बढ़ाया जा सके। जमा प्रमाणपत्र बुनियादी तौर पर चलनिधि की तंगी के दौरान बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी परक्राम्य मुद्रा बाजार की लिखत हैं। आम तौर पर अपेक्षाकृत छोटे शाखा नेटवर्क वाले छोटे बैंक जमा प्रमाणपत्र जुटाते हैं। चूंकि सीडी बड़ी जमाराशियों के होते हैं, अतः सीडी पर लेनदेन की लागत खुदरा जमाराशियों की अपेक्षा कम होती है। भारतीय मितीकाटा एवं वित्त गृह लि. (डीएफएचआइ) की स्थापना 1988 में मुद्रा बाजार लिखतों का चलनिधि उपलब्ध कराने तथा इन लिखतों में द्वितीयक बाजारों के विकास में सहायता करने के लिए की गई। डीएफएचआइ की स्थापना रिज़र्व बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा संयुक्त रूप से की गई। तथपि रिज़र्व बैंक ने डीएफएचआई में अपनी शेयरधारिता का मार्च 2003 में विनिवेश कर दिया । सही मूल्य का पता लगाने के लिए मुद्रा बाजार में ब्याज दरों को 1989 में मुक्त कर दिया गया। मांग मुद्रा के मामले में ब्याज दरों को चरणबद्ध रूप में अपविनियमित किया गया। यह रोचक बात है कि मुद्रा बाजार की दरें भारत में बैंकों की जमा और उधार की दरों को अपविनियमित करने से पहले ही कर दी गई।

6.38 पुनर्खरीद करार (रेपो) मुद्रा बाजार की अल्पावधिक लिखत है जो केंद्रीय बैंकों द्वारा बाजार में अल्पावधिक चलनिधि बढ़ कर तथा प्रणाली से अतिरिक्त चलनिधि को सोखकर मुद्रा बाजार की दरों में आई उद्वेगशीलता को शांत करने के लिए प्रयुक्त की जाती है।[2] मुद्रा बाजार की लिखत होने के कारण रेपो बाजार के विनियमन का कार्य रिज़र्व बैंक के अधिकार क्षेत्र में आता है। तदनुसार, रिज़र्व बैंक बैंकों और गैर बैंक संस्थाओं द्वारा लिखत के रूप में रेपो के उपयोग से संबद्ध है, तथा सहभागियों की पात्रता भी, जो ऐसे लेनदेन कर सकते हैं, जारी करता है। तथा यह केंद्र सरकार के साथ परामर्श करके बैंकों को इस संबंध में अनुदेश जारी करता है। भारत में बैंक अकसर सरकारी तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों तथा पीएसयू बांडों के संबंध में वापस खरीद के लिये 15 अप्रैल 1987 तक आपस में तथा बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और अपने बड़े ग्राहकों के साथ करार करते थे जब रिज़र्व बैंक ने कुछ मार्गदर्शी दिशा-निदेश जारी किए, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ कंपनी प्रतिभूतियों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा जारी बांडों की वापस खरीद कर रोक लगा दी गई थी। 1 दिसंबर 1987 से भारतीय यूनिट ट्रस्ट की यूनिटें रेपो लेनदेन करने के लिए अनुमोदित प्रतिभूतियां नहीं रहीं। रेपो सुविधा का भारी मात्रा में दुरुपयोग का पता लगने के बाद अवांछनीय गतिविधियों को समाप्त करने की दृष्टि से बैंकों को गैर बैंक ग्राहकों के साथ सरकारी या अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में वापस खरीद की व्यवस्था

[2] रिपो व्यवस्थाओं में केंद्रीय बैंकों का शामिल होना अनिवार्य नहीं हैं, वे बाजार सहभागियों के बीच भी हो सकते हैं।

करने से रोक दिया गया, जबकि वे 4 अप्रैल 1988 से अन्य बैंकों के साथ (अंतरबैंक) वापस खरीद व्यवस्थाएं कर सकते हैं।

सुधार/सुधारोत्तर अवधि (1990 का दशक)

6.39 भारत में मुद्रा बाजार में, विशेषकर, 1990 के बाद मध्य दशक से, मुद्रा बाजार के लिखतों के उन्नयन, नई लिखतों को शुरू करने, तथा बाजार में गम्भीरता तथा चलनिधि बढ़ाने के लिए अनुपूरक उपायों की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रगति देखी गई। इस अवधि के दौरान भारत में मुद्रा बाजार की लिखतों में (i) मांग/सूचना मुद्रा (ii) मीयादी मुद्रा, (iii) जमा प्रमाणपत्र, (iv) वाणिज्यिक पत्र, (v) खजाना बिल, (vi) पुनर्खरीद करार (रेपो), (vii) ब्याज दर -स्वैप/वायदा दर करार तथा (viii) वाणिजिक बिलों की पुनर्भुनाई योजना शामिल थी।

6.40 1990 के बाद के दशक के दौरान मांग मुद्रा बाजार में सहभागिता व्यापक होकर अन्य सहभागियों के साथ-साथ इसमें प्राथमिक और अनुषंगी व्यापारियों, कंपनी निकायों (प्राथमिक व्यापारियों के माध्यम से) को भी शामिल कर लिया गया। जहां बैंक और प्राथमिक व्यापारियों को बाजार में उधार देने और उधार लेने की अनुमति थी, अन्य संस्थाएं केवल उधारदाता के रूप में भाग ले सकते थी। नरसिंहम समिति (1998) तथा मांग मुद्रा बाजार के विकास की जांच करने के लिए गठित रिज़र्व बैंक के आंतरिक कार्यदल (1997) की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए मांग मुद्रा बाजार का सुधार करने तथा इसे पूर्णतः अंतरबैंक बाजार बनाने के लिए चरणबद्ध रूप में 1999 में उपाय शुरू किए गए। 1990 के दशक के उत्तरार्ध से रेपो बाजार के विकास के साथ ही मांग मुद्रा बाजार को प्राथमिक व्यापारियों को शामिल करते हुए एक पूर्णतः अंतरबैंक बाजार के रूप में रूपांतरित कर दिया गया है। यह प्रक्रिया जो 1999 में शुरू की गई थी, अगस्त 2005 में पूरी हो गई।

6.41 1999 में इस मुद्रा बाजार को और गहन बनाने तथा बाजार सहभागियों को अपने जाखिमों को सुरक्षित करने की दृष्टि से भारतीय मुद्रा बाजार की एक उल्लेखनीय गतिविधि रुपया व्युत्पन्नी लिखत (डेरिवेटिव्स) अर्थात ब्याज दर स्वैप (अदला-बदली), (आइआरएस)/ वायदा दर करार (एफआरए) की शुरुआत है। इसकी शुरुआत से उठाए गए कई अन्य उपायों के अलावा, 20 मई 2005 से बाजार सहभागियों को सूचित किया गया कि वे ब्याज दर व्युत्पन्नी लिखत के लिए केवल देशी रुपया बेंचमार्क का ही उपयोग करें । तथापि बाजार सहभागियों को बेंचमार्क के रूप में मुंबई अंतरबैंक वायदा ऑफर्ड दर (माइफोर) (एमआइएफओआर) का उपयोग करने के लिए छह माह की संक्रमण अवधि दी गई, जिसकी समीक्षा की जा सकती है। तथापि निश्चित आय मुद्रा बाजार तथा डेरिवेटिव्स संघ (फिम्मडा) के अनुरोध पर बाजार सहभागियों को रिज़र्व बैंक द्वारा अनुमोदित उपयुक्त सीमाओं के अधीन, बाजार निर्माण के प्रयोजन के लिए अनुमति योग्य विदेशी मुद्रा जाखिमों वाले लेनदेनों के संबंध में माइफोर स्वैप का उपयोग करने की अनुमति दी गई।

6.42 रेपो बाजार को 1992 की अनियमितताओं के कारण गहरा धक्का लगा। प्रतिभूति बाजार की अनियमितताओं के संदर्भ में गठित जानकीरामन समिति ने यह रिपोर्ट दी थी कि रेपो के लिए फलता-फूलता बाजार उपलब्ध है तथा वस्तुतः न केवल बैंकों ने, बल्कि मुद्रा बाजार के सभी थोक सहभागियों ने व्यापक रूप से रेपो लेनदेनों का उपयोग किया है। भले ही उसके उपयोग पर स्पष्टतः प्रतिबंध लगा हो। इन अनियमितताओं का पता लगने के बाद रिज़र्व बैंक ने तैयार वायदा लेनदेनों पर रोक लगा दी तथा बैंकों पर सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों तथा अनुमोदित/ न्यासी प्रतिभूतियों में रेपो लेनदेन करने पर 22 जून 1992 से प्रतिबंध लगा दिया। तथापि खजाना बिलों की रेपो को इस प्रतिबंध से छूट दी गई। खजाना बिलों के लेनदेनों सहित दोहरे तैयार वायदा लेनदेनों पर भी कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा यह पाबंदी वित्तीय संस्थाओं पर लगा दी गई। जस्टिस वरियावा का निर्णय भारत में रेपो बाजार के विकास के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसने यह निर्णय दिया कि बैंकों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा किए गए सभी रेपो लेनदेन अवैध और शून्य थे क्योंकि प्रतिभूति संविदा विनियमन अधिनियम (एससीआरए) 1956 की धारा 16 तथा सरकार की दिनांक 27 जून 1969 की अधिसूचना के अनुसार उन पर प्रतिबंध लगा हुआ है।[3] रेपो लेनदेनों को कानूनी रूप से सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से रिज़र्व बैंक को इस मुद्दे पर बैंकों तथा रिज़र्व बैंक द्वारा आवश्यक समझी गयी संस्थाओं द्वारा उक्त अधिसूचना में निहित पाबंदी से छूट दिए जाने के लिए सरकार से बात करनी पड़ी। उक्त अधिसूचना को संशोधित करते हुए जिसमें प्रतिभूतियों में वायदा लेनदेनों पर पाबंदी लगाई गई थी, सरकार ने अधिसूचनाएं जारी कीं, जिनकी बदौलत बैंकिंग कंपनियों, सहकारी बैंकों, प्राथमिक व्यापारियों (नाम देते हुए तथा अनुषंगी व्यापारियों (नाम देते हुए) को यह अनुमति दी गई कि वे निर्दिष्ट प्रतिभूतियों में तैयार वायदा लेनदेन कर सकते हैं बशर्ते, इन लेनदेनों का निपटान लोक ऋण कार्यालय, मुंबई में रखे गए एसजीएल खातों के माध्यम से किया जाए। इसके अलावा, केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित गैर बैंक संस्थाओं को केवल रिवर्स रिपो करने की अनुमति दी गई।

6.43 1999 से रेपो बाजार में फिम्मडा की सहायता से सहभागियों तथा लिखतों को व्यापक बनाकर, संस्थाओं का विकास करके तथा लेनदेन और लेखांकन की परंपराओं में एकरूपता लाकर अनेक सुधार किए गए। रेपो परिचालनों को दक्ष बनाए तथा पर्याप्त सुरक्षोपायों के साथ भारतीय समाशोधन निगम लि. का गठन किया गया। रेपो बाजार में कुल लेनदेन ने

[3] रिपर्चेज एग्रीमेंट (पुनर्खरीद करार) रेपो संबंधी रिपोर्ट, भारिबैंक 6 अगस्त 1999

विभिन्न कारकों जैसे मांग/सूचना, मुद्रा लेनदनों से संबंधित पात्र बाजार सहभागियों की संख्या पर लगाई गई सीमाएं, सुपुर्दगी बनाम भुगतान II को लागू करना, कुछ अवधियों के दौरान मांग दर से भी नीचे चल रही रेपो और बाजार रेपो दरों को रोल ओवर की अनुमति देना। मुद्रा तथा सरकारी प्रतिभूति बाजारों से संबंधित तकनीकी परामर्शदात्री समिति (टीएसी) के सलाह के आधार पर 23 फरवरी 2003 से सुपुर्दगी बनाम भुगतान तथा पारदर्शिता सुनिश्चित करते हुए उपयुक्त सुरक्षोपायों के साथ गैर एसजीएल खाता धारकों को चुनिंदा श्रेणी के लिए भी रेपो पात्रता को बढ़ा दिया गया। साथ ही 11 मई 2005 से मार्केट रेपो सुविधा में सहभागिता बढ़ाकर कुछ पात्रता मानदंडों तथा सुरक्षापायों के साथ गैर अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों तथा अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के पास गिल्ट खाता रखने वाली कंपनियों को भी दे दी गई। प्रतिभूतियों की जमानत पर उधार लेने तथा देने संबंधी दायित्व (सीबीएलओ) भी मात्राओं में तेज वृद्धि के साथ मुद्रा बाजार में उभरती लिखत के रूप में अब सामने आया है। सीबीएलओ भारत में अनोखी लिखत है। यह सीसीआइएल द्वारा जनवरी 2003 में उन गैर बैंक सहभागियों के लिए शुरू की गई थी जो या तो अंतरबैंक मांग मुद्रा में से निकल गए थे या जिन्हें इस बाजार में सीमित पैठ दी गई थी, बड़े-बड़े बाजार सहभागियों के चलते उपयुक्त क्वोटा नहीं प्राप्त कर पाते थे।

6.44 भारत में वाणिज्यिक पत्र रिज़र्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार अच्छी साख दर वाली कंपनियों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किए जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में वाणिज्यिक पत्र जारी करने की इन शर्तों में काफी छूटें दी गई हैं। बैंक वाणिज्यिक पत्रों में प्रमुख निवेशकर्ता हैं। बैंकिंग प्रणाली में चलनिधि तथा सीपी की दरों और बैंकों की मुख्य उधार की दरों के बीच का अंतर भारत में सीपीबाजार के मुख्य प्रेरक रहे हैं, कभी-कभी बैंकों ने मांग मुद्रा बाजार से उधार लेकर तथा सीपी बाजार में उधार देकर अंतरपणन किया है। क्योंकि अंतरबैंक मांग दरें अक्सर सीपी की दर से निम्न हुआ करती हैं। भारत में कंपनी जगत ने जब भी मुद्रा बाजार की दरें बैंकों के मुख्य उधार दरों (पीएलआर) से निम्न रही हैं, बैंकों से उधार लेकर सीपी जारी करने को वरीयता दी है। भारत में सीपी के लिए सक्रिय द्वितीय बाजार नहीं उभर सका क्योंकि यहां निवेशक लिखतों को परिपक्वता तक रखने को वरीयता देते हैं, जिसका कारण है उच्चतर जोखिम समायोजनागत प्रतिलाभ तथा विभिन्न निवेशकों तथा राज्यों के बीच स्टाम्प ड्यूटी में अंतर का होना।

6.45 सीपी बाजार को सक्रिय करने के लिए किए गए महत्वपूर्ण उपाय थे - अक्तूबर 1997 में, सीपी को नकदी ऋण सीमाओं से असंबद्ध करना, तथा अक्तूबर 2000 में सीपी का अपने आप में अलग लिखत के रूप में रूपांतरण तथा सीपी का लेनदेन डिमेट फार्म में करना, जिससे 1 मार्च 2004 से लनदेन की लागत तथा स्टैम्प ड्यूटी को कम करने में सहायता मिली। गैर एसएलआर ऋण प्रतिभूतियों पर रिज़र्व बैंक के मार्गदर्शी दिशा-निदेशों के कारण परस्पर निधियों के भारी निवेश हित, तथा सार्वजनिक जमाराशियों का संग्रह करने से पट्टेदायी और वित्तीय कंपनियों को चरणबद्ध रूप में हटाने की शुरू की गई नीति ने भी सीपी बाजार को बढ़ा दिया ।

6.46 1989 से जमा प्रमाण पत्र (सीडी) के शुरू किए जाने से लेकर सीडी बाजार को नमनीयता और गहनता प्रदान करने की दृष्टि से रिज़र्व बैंक ने अनेक पहलें की हैं। सीडी के लिए भारत में द्वितीयक बाजार का विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि धारकों द्वारा लिखतों को परिपक्व होने की अवधि तक रखना क्योंकि अन्य खुदरा जमाराशियों की तुलना में उस पर उच्च ब्याज दर दी गई थीं, सीडी की नमनीयता में इन वर्षों के दौरान सुधार हुआ है। जिसके कारण थे - न्यूनतम अवरुद्ध अवधि में कमी करना, जारी करने की राशि में कमी लाना तथा डिमेट रूप को वरीयता देना।

6.47 हाल की अवधि में, अन्य बातों के साथ-साथ मुद्रा बाजार संबंधी तकनीकी समूह की सिफारिशों के अनुसरण में रिज़र्व बैंक का मुख्य ध्यान तथा नीतिगत बल मुद्रा बाजार में प्रतिभूतिकृत उधार बाजार को सुधारने, रुपया आय वक्र में सुधार लाने, पारदर्शिता सुनिश्चित करने तथा बेहतर मूल्य की खोज, बेहतर जोखिम प्रबंधन के अवसर प्रदान करने तथा मौद्रिक परिचालनों को सुदृढ़ करने पर रहा है। निकट भविष्य में, मुद्रा बाजार के अनेक ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर रिज़र्व बैंक को ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है। हालांकि रेपो एक प्रमुख मुद्रा बाजार की लिखत के रूप में उभरकर आई है, परंतु एफआरबीएम को लागू करने से सरकारी प्रतिभूतियों के कम होने की संभावना है, जो प्रतिभूतियों के समूह को व्यापक आधार प्रदान करने की मांग करती है। जो रेपो तथा सीबीएलओ बाजारों के लिए जमानत का काम कर सके। ओटीसी डेरिवेटिव्स से जुड़े भी कई मुद्दे हैं, जैसे ऐसी संविदाओं की वैधता की अपस्पष्टता, निवल राशि निकालने संबंधी कानूनों का न होना आदि। इस संदर्भ में, ओटीसी डेरिवेटिव्स को कानूनी स्पष्टता प्रदान करने के लिए रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 में संशोधन महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इससे बाजार का और भी विकास हो सकता है।

6.48 मुद्रा बाजार का व्यवस्थित विकास करने की दृष्टि से विभिन्न बेंचमार्कों के आधार पर अलग-अलग श्रेणी के सहभागियों के लिए मांग मुद्रा बाजार में उधार लेने और उधार देने के लिए विवेकसम्मत सीमाएं निर्धारित की गई हैं। अलग-अलग बेंचमार्क से मानक बेंचमार्क की ओर जाने की संभाव्यता का पता लगाने की जरूरत है। साथ ही, आस्ति देयता प्रबंध ढांचे में तथा जोखिम प्रबंध प्रणालियों में सुधार होने के फलस्वरूप मांग/सूचना मुद्रा बाजार में जैसा कि तुलनपत्र की संरचना द्वारा अपेक्षित है, बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों को अधिक लचीलापन प्रदान करने की संभावना की भी जांच की जानी है।

मुद्रा बाजार की गतिविधि

6.49 मांग/नोटिस मुद्रा बाजार जो कई दशकों से भारतीय मुद्रा बाजार का बुनियादी घटक था, धीरे-धीरे अन्य लिखतों जैसे आइआरएस/एफआरए/रेपो, सीपी, सीबीएओ तथा सीडी को रास्ता देता रहा है (सारणी 6.1)। मांग मुद्रा बाजार में दैनिक औसत कुल कारोबार जो 2001-02 में रु. 35,144 करोड़ रुपए का हुआ करता था, 2004-05 में घटकर लगभग आधा 14,170 करोड़ रुपए का रह गया, जो अन्य बातों के साथ रिज़र्व बैंक की ओर से यह सचेत प्रयास रहा है कि मांग /सूचना मुद्रा बाजार से पूर्णतः अंतरबैंक बाजार की ओर बढ़ा जाए।

6.50 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों से, मांग दरें, प्रणाली में विद्यमान चलनिधि की स्थितियों के आधार पर निर्भर रहते हुए काफी कुछ घटती बढ़ती रहीं हैं। औसत मांग मुद्रा जो 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों में 1993-94 के 7 प्रतिशत से लेकर 1995-96 में 17.7 प्रतिशत के दायरे में घटती बढ़ती रही हैं, 2000-01 से 2004-05 के दौरान वह 4.6 प्रतिशत से 9.2 प्रतिशत के सीमित दायरे में घटती बढ़ती रही जो अन्य बातों के साथ-साथ प्रणाली में विद्यमान चलनिधि की सुविधाजनक स्थिति तथा एलएएफ के माध्यम से बैंक की चलनिधि समायोजन सुविधा की सफलता को दर्शाती है। समग्र चलनिधि, सरकार के उधार लेने के कार्यक्रम, खातेदार ऋण में वृद्धि, पूंजी प्रवाह, कर बहिर्गम, मौसमी कारक (भारी करेंसी आहरण) तथा रिज़र्व बैंक के बाजार परिचालन (खुले बाजार के परिचालन), रेपो, रिवर्स रेपो, पुनर्वित्त/ स्थायी सुविधाएं, नकदी प्रारक्षित अनुपात) जैसे अनेक कारकों ने मांग मुद्रा बाजार को प्रभावित किया। जहां ऐतिहासिक रूप से सांविधिक पूर्वक्रय (सीआरआर/एसएलआर) अपेक्षाएं तथा आरक्षित राशि रखने संबंधी अवधि वे प्रमुख घटक थे जिन्होंने भारत में मांग मुद्रा दरों को प्रभावित किया, वहां 1990 के बाद के दशक में अर्थव्यवस्था को क्रमिक रूप से खोलने से तथा वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों के समेकन के कारण मांग की दरों ने विदेशी मुद्रा, सरकारी प्रतिभूतियों तथा कभी-कभी पूंजी बाजार की गतिविधियों से प्रभावित होने की प्रवृत्ति दर्शाई है।

6.51 मीयादी मुद्रा बाजार, जो 14 दिनों से अधिक के लिए अल्पावधिक निधियों के लिए बाजार है, गत अवधि में अनेक उपायों को किए जाने के बावजूद विकसित नहीं हो पाया है। इस तथ्य के बावजूद कि बैंकों को 19 अप्रैल 1997 से अंतरबैंक देयताओं पर सीआरआर/एसएलआर रखने से छूट दे दी गई थी, मीयादी मुद्रा बाजार में औसत दैनिक कुल कारोबार में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है।

6.52 बैंक, विशेषकर उस अवधि में जब ऋण की मांग उच्च होती है, जमा प्रमाणपत्र जारी करते हैं। सीडी जारी करने की मात्रा में 1993 से काफी उतार-चढ़ाव रहा है। चलनिधि की स्थितियों को कठोर बनाने तथा बैंक ऋण के लिए बढ़ी हुई मांग के कारण सीडी की मांग 2005 के दौरान तेजी से बढ़ी (9 दिसंबर 2005 को बकाया राशि रु. 30,445 करोड़ की थी (चार्ट VI.1)

चार्ट VI.1 : जमा प्रमाणपत्र

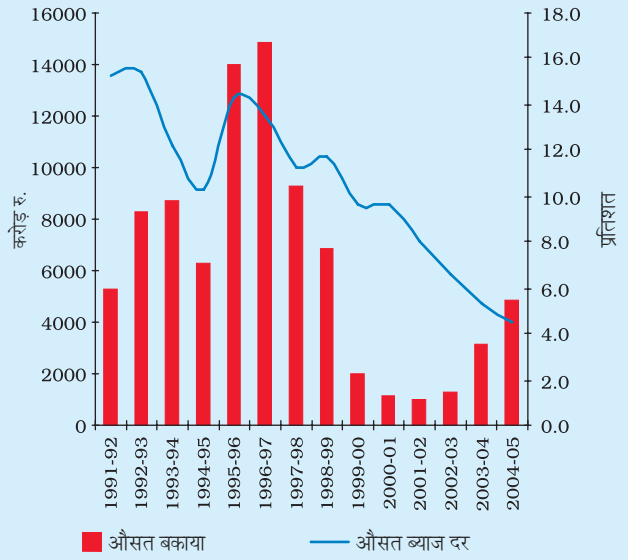

सारणी 6.1 : मुद्रा बाजार की गतिविधि

(करोड़ रु.)

वर्ष	औसत दैनिक कुल कारोबार			बकाया राशि*			वायदा दर करार/ ब्याज दर स्वैप (अनुमानित राशि)	वाणिज्यिक बैंकों द्वारा पुनर्भुनाए गए वाणिज्यिक बिल
	मांग मुद्रा बाजार	मीयादी मुद्रा बाजार	रेपो बाजार (एलएएफ से बाहर)	जमानती उधार तथा उधार देने संबंधी देयताएं	वाणिज्यिक पत्र	जमा प्रमाणपत्र		
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1999-00	23,161	–	6,895	–	7,014	1,908	–	–
2000-01	30,423	–	10,500	–	6,751	1,199	18,014	–
2001-02	35,144	195	30,161	–	7,927	949	50,503	–
2002-03	29,421	341	46,960	30	8,268	1,224	1,50,039	417
2003-04	17,191	519	10,435	515	7,835	3,212	3,74,631	515
2004-05	14,170	526	17,135	6,780	11,723	6,052	8,12,500	355

* मार्च के अंत में

स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, वार्षिक रिपोर्ट भारिबैंक, विभिन्न अंक ।

चार्ट VI.2 क : वाणिज्यिक पत्र

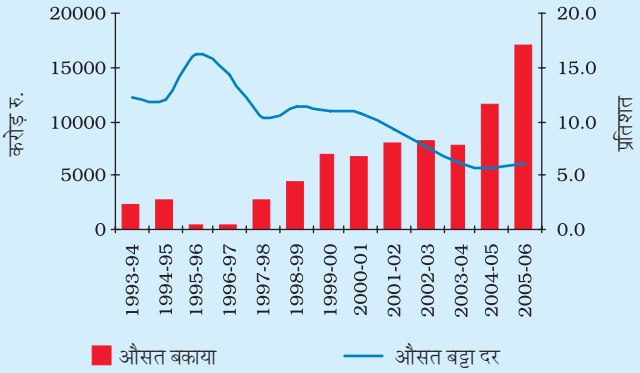

चार्ट VI. 2ख : जमा प्रमाणपत्र / मूल उधार दर का औसत बट्टा दर

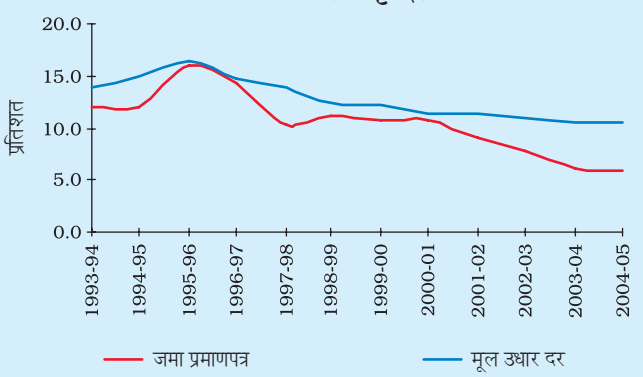

6.53 जमा प्रमाणपत्रों (सीडी) में निरंतर वृद्धि होने के कई कारण रहे हैं, जैसे गैर एसएलआर ऋण प्रतिभूतियों में बैंकों द्वारा निवेश पर रिज़र्व बैंक की संशोधित गाइड लाइन्स, 1 मार्च 2004 से सीडी पर स्टाम्प ड्यूटी में कमी, स्रोत पर कर की कटौती वापस लेना, वैकल्पिक प्रतिस्पर्धी लिखतों जैसे सावधि जमा की तुलना में सीडी के अंतर्गत जमाराशियों का समय- पूर्व आहरण की सुविधा समाप्त करना, तथा द्वितीयक बाजार की लेनदेन के लिए बेहतर अवसर/मांग की ओर देखें तो, भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सबी) द्वारा पारस्परिक निधियों (एमएफ) पर अपनी निधियों को बैंक जमाराशियों के रूप में जमा करने पर पाबंदी लगाना तथा पारस्परिक निधियों के पास निधियों की बेहतर स्थिति ने सीडी बाजार को प्रोत्साहन प्रदान किया। सीडी बाजार में एक प्रोत्साहनपरक गतिविधि यह है कि कुछ सर्वोत्तम साख दर वाले बैंक अपनी सीडी की रेटिंग करा रहे हैं ताकि वे बाजार में बेहतर पहुंच प्राप्त कर सकें हालांकि वर्तमान मार्गदर्शी दिशानिदेशों के अनुसार यह रेटिंग कराना अनिवार्य नहीं है।

6.54 कंपनियों द्वारा सीपी जारी करने की परंपरा भी 2003-04 से तेजी से बढ़ी है। सीपी की बकाया राशि मार्च 1993 के अंत के रु. 577 करोड़ से तेजी से बढ़कर मार्च 1998 के अंत तक रु. 1500 करोड़ तथा दिसंबर 2005 के अंत तक रु. 17,180 करोड़ की हो गई।

6.55 यह देखा गया है कि कंपनियां आम तौर पर उस समय सीपी जारी करती हैं जब मुद्रा बाजार की दरें बैंकों की मूल उधार दरों (पीएलआर) से सामान्यतया निम्न होती हैं। यह उनकी मात्रा की घटबढ़ से झलकता है (चार्ट VI.2 क तथा VI.2 ख।

6.56 जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारतीय मुद्रा बाजार में एक उल्लेखनीय गतिविधि रुपया ब्याज दर स्वैप/ वायदा दर करारों की 1999 में शुरुआत होने की रही है । ताकि बाजार के सहभागी अपने जोखिमों से सुरक्षा प्राप्त कर सकें तथा रुपया आयवक्र के उदय को भी सुविधाजनक बना सकें। इन लिखतों की लोकप्रियता इस तथ्य से देखी जा सकती है कि छोटी-सी अवधि में ही बाजार में इनकी मात्रा (अनुमानित मूलधन की राशि) मार्च 2001 के अंत की रु. 18,014 करोड़ से तेजी से बढ़कर सितंबर 2005 में रु. 13,15,306 करोड़ की हो गई।

6.57 रेपो बाजार (बाजार रेपो) मुद्रा बाजार का दूसरा घटक है जो उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है, क्योंकि यह अल्पावधिक निधियों को जमा करने की एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक लिखत के रूप में उभरी है। जो पूर्णतः अंतर बैंक मांग/सूचना मुद्रा लागत की ओर बढ़ रही है। कुछ तीव्र उतार-चढ़ाव के बावजूद रेपो बाजार में औसत दैनिक कुल कारोबार रेपो बाजार में तेजी से बढ़ा है, विशेषकर 2001-02 से और 2002-03 में यह सर्वोच्च स्तर पर पहुंच गया। उसके बाद इसमें गिरावट आई और 2004-05 में यह रु. 17,135 करोड़ का रहा।

6.58 सारांश में, हाल के वर्षों में, रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों के संतुलित विकास को तेज करना, नए लिखतों को शुरू करना, तथा वर्तमान लिखतों को अधिक नमनीय बनाना, गैर प्रतिभूतिकृत ऋणों पर सहभागियों की निर्भरता को कम करना, अल्पावधि प्रतिभूतियों में मूल्य (ब्याज) का पता लगाना, तथा भुगतान प्रणाली की बुनियादी संरचना को उन्नत करना रहा है। तदनुसार, रिज़र्व बैंक की रणनीति पूर्णतः मांग/सूचना मुद्रा बाजार विकसित करने; पूर्ण चलनिधि समायोजन सुविधा शुरू करने, बुनियादी संरचना का विकास करने, पारदर्शिता को प्रोन्नत करने, तथा गैर बैंक सहभागियों के लिए लिखतों के संबंध में विभिन्न उपाय शुरू करने पर ध्यान केंद्रित करने की रही है। वर्षों से रिज़र्व बैंक द्वारा की गई विभिन्न पहलों के कारण मुद्रा बाजार में गहनता तथा चलनिधि में काफी वृद्धि हुई है।

सरकारी प्रतिभूति बाजार

6.59 भारत में सरकारी प्रतिभूति बाजार समग्र ऋण बाजार का काफी बड़ा भाग बनता है। इस बाजार की ब्याज दरें वित्तीय बाजारों के अन्य घटकों के लिए बेंचमार्क उपलब्ध कराती है। ऐतिहासिक रूप से

भारत में सरकारी प्रतिभूति बाजार में प्रोत्साहन भारी सरकारी उधार लेने की अपेक्षाओं से प्राप्त हुआ है। जबकि 1990 के दशक में इसका अतिरिक्त कारण था - बढ़ा हुआ पूंजीगत प्रवाह तथा इसे निष्प्रभावी करने की जरूरत। रिज़र्व बैंक ने जब भी चाहा मौद्रिक विस्तार को निष्प्रभावी करने के लिए अपने संविभाग से विपणन योग्य देशी पात्र बांडों का उपयोग किया ।

कानूनी आधार

6.60 सरकारी प्रतिभूतियों में रिज़र्व बैंक के परिचालन को कानूनी आधार भारतीय रिज़र्व अधिनियम, 1934 की धारा 20, 21 तथा 21 क द्वारा प्रदान किया गया है । जिसके अनुसार रिज़र्व बैंक को लोक ऋण के प्रबंधन तथा केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के नए ऋण जारी करने के कार्य सौंपे गए हैं। लोक ऋण अधिनियम, 1944 के प्रावधान भी रिज़र्व बैंक पर लोक ऋण के प्रबंधन का उत्तरदायित्व डालते हैं। इन कार्यों में नए ऋण जारी करना, प्रत्येक छमाही में ब्याज अदा करना, रुपया ऋणों को चुकाना तथा ऋण प्रमाणपत्रों से संबंधित सभी मामले और ऋण धारिताओं का पंजीकरण शामिल है।

6.61 रिज़र्व बैंक प्रतिभूतियों के मूल्यों और आय को प्रभावित करके बाजार की स्थितियों को व्यवस्थित करने के लिए गिल्ट बाजार में सक्रिय रूप से परिचालित करता है। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 17 (8) के अंतर्गत रिज़र्व बैंक को केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार की किसी भी मीयाद की तथा केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश पर केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकरण की प्रतिभूतियों को खरीद और बेच सकता है। वस्तुतः यह भाग खुले बाजार परिचालनों के लिए कानूनी स्थापना करने का अधिकार देता है तथापि वर्तमान में रिज़र्व बैंक केवल केंद्र सरकार द्वारा जारी प्रतिभूतियों का लेनदेन करता है, न कि राज्य सरकारों तथा स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा जारी प्रतिभूतियों का । रिज़र्व बैंक को सरकारी प्रतिभूति बाजार पर विनियामक शक्तियां प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 की धारा 16 से प्राप्त होती हैं, जिसके अंतर्गत सरकार ने अपने द्वारा प्रयोग की जानेवाली शक्तियां रिज़र्व बैंक को प्रत्यायोजित कर दी हैं।

सुधार-पूर्व अवधि (1930 दशक से 1980 के दशक तक)

6.62 एक गहन तथा तरल सरकारी प्रतिभूति बाजार, विशेषकर, 1950 के बाद के दशक से, नहीं उभर सका, मुख्यतः सरकार की भारी उधार राशियां लेने की आवश्यकताओं के कारण तथा सरकारी प्रतिभूतियों पर कृत्रिम रूप से निम्न कूपन दरें होने के कारण, जिसका प्रणाली में वित्तीय आस्तियों की संपूर्ण आय संरचना पर प्रभाव पड़ा, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार के बजट घाटे का वित्त पोषण तदर्थ खज़ाना बिलों के माध्यम से स्वचालित मौद्रीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत किया जाता था। सरकारी बांडों की भारी आपूर्ति को इसकी नियंत्रित दरों पर खपाना सुनिश्चित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने न्यूनतम सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) बनाए रखना अनिवार्य कर दिया जिसके द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को अपनी देयताओं के काफी बड़े भाग को बाजार की ब्याज दरों से निम्न दरों पर सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश के लिए एक तरह उठाकर रख देना पड़ता था। इस बाजार में भी अनेक प्रकार की विशेषताएं होती थीं जैसे - वाउचर ट्रेडिंग, स्विच कोटा, नकदी खरीद तथा पृथक से खरीद बिक्री की सूचियां ।

6.63 ऐतिहासिक रूप से श्रेष्ठ प्रतिभूतियों में निवेशकों में अलग-अलग व्यक्ति तथा सस्थाएं शामिल होती थी। कुछ समय बाद, श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार ने बंधक बाजार का स्वरूप ले लिया जिसमें, वित्तीय संस्थाएं प्रमुख अभिदानकर्ता हो गईं। बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 24 के अंतर्गत बैंकों को 16 मार्च 1949 से अपनी कुल मांग और मीयादी देयताओं की न्यूनतम 20 प्रतिशत तक तरल आस्तियां नकदी, स्वर्ण या भार-रहित अनुमोदित प्रतिभूतियों के रूप में रखनी पड़ती थीं। एसएलआर उस कार्रवाई का परिणाम था जिसके अंतर्गत बैंकों को अपनी सरकारी प्रतिभूति धारिताओं को बेचकर परिवर्ती प्रारक्षित अपेक्षाओं के प्रभाव से मुक्ति पाने से रोकना था। इस अधिनियम में बाद में 1962 में संशोधन किया गया जिसमें सभी बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे 16 सितंबर 1964 से भारत में अपनी कुल मांग और मीयादी देयताओं का कम से कम 25 प्रतिशत की तरल आस्तियां रखेंगे। 1970 से एसएलआर को क्रमिक रूप से बढ़ाया गया जिसका उदेश्य बैंक ऋण में विस्तारवादी प्रवृत्ति को रोकना तथा बैंकों के सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश को बढ़ाना था, विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं के वित्त पोषण के संदर्भ में । क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों को यह अनुमति दी गई कि वे न्यूनतम 25 प्रतिशत के स्तर पर एसएलआर रख सकते हैं। यह एसएलआर बारंबार बढ़ाया गया और 1970 के दशक में बढ़ाकर दिसंबर 1978 में 34 प्रतिशत, अक्तूबर 1981 में 35 प्रतिशत एवं सितंबर 1990 में 38.5 प्रतिशत कर दिया गया ।

6.64 सुधार-पूर्व अवधि के दौरान भारत में वित्तीय बाजार की संरचना का एक पहलू था - सरकारी तथा अर्ध सरकारी प्रतिभूतियों के लिए बाजार की संकीर्णता। इसका तात्पर्य था कि चलनिधि को नियंत्रित करने के लिए सरकारी प्रतिभूतियों में खुले बाजार के परिचालनों का उपयोग करने का सीमित अवसर । अतः इस क्षेत्र में रिज़र्व बैंक के परिचालनों को सरकारी प्रतिभूति बाजार में मुख्यतः नियंत्रित स्थिति को सुनिश्चित बनाए रखने की ओर मोड़ दिया गया ताकि सार्वजनिक क्षेत्र में एक और

केंद्र सरकार, राज्य सरकारों तथा विभिन्न अन्य उधारकर्ताओं को तथा दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र तथा शेष अर्थव्यवस्था को उपलब्ध संसाधनों का तर्कसंमत आबंटन हो सके।

6.65 सरकारी प्रतिभूतियों पर आय के स्रोत पर कर की कटौती (टीडीएस) की परंपरा ने सरकारी प्रतिभूतियों की वाउचर-ट्रेडिंग, तथा बाजार में मूल्यों में विकृति करने की परंपरा शुरू कर दी। इस परंपरा के चलने के कारण रिज़र्व बैंक के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह स्विच लेनदेन के लिए कोटा निर्धारित करें, ब्याज की देय तारीख से एक माह पहले विशेष प्रतिभूति में ट्रेडिंग को रोक दें आदि जिसने कुछ सीमा तक बाजार में डीलरों की आजादी पर पाबंदी लगा दी। इसके अलावा, इसने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमें रिज़र्व बैंक को इसके खुले बाजार के परिचालनों पर सीमा लगानी पड़ी। सरकारी प्रतिभूतियों में अंतर बैंक लेनदन को प्रोत्साहित करने के लिए बिना किसी सीमा के त्रिकोणीय स्विचों (अंतरणों) की अनुमति दी गई तथा अनुमोदित ब्रोकरों को यह अनुमति दी गई कि वे ऐसी संविदाएं प्रस्तुत कर सकते हैं। तथापि, वास्तव में, इन त्रिकोणीय स्विचों का उपयोग बैंकर ही कर रहे थे, अधिकांशतः अपने लिए आय कर वाउचर का नाम लेने के लिए। 1981 में रिज़र्व बैंक द्वारा स्थापित एक आंतरिक दल ने यह सिफारिश की थी कि ऐसी ट्रेडिंग के लिए प्रोत्साहन को बंद करके इस ट्रेडिंग को रोकने के लिए उपाय किए जाने चाहिए। 1997 में सरकारी प्रतिभूति बाजार में स्रोत पर कर की कटौती (टीडीएस) को हटा देने से यह प्रथा समाप्त हुई तथा इसने ऋण बाजार में कर-सुधारों की शुरुआत की घोषणा कर दी।

6.66 प्रारंभ में अपनायी गई नीति का उद्देश्य खरीद और बिक्री के लेनदेनों के लिए दो अलग-अलग सूचियां बनाना था, और इन सूचियों में अलग- अलग प्रतिभूतियों को शामिल किया गया । एक निश्चित राशि से कम राशि की प्रतिभूतियों का स्टॉक प्रतिभूतियों की उस सूची में रखा गया, जो खरीदी जाने के लिए थीं तथा उस विनिर्दिष्ट राशि से अधिक राशि की प्रतिभूतियों के स्टाक को बिक्री की सूची में रखा गया। तीन साल के भीतर परिपक्व हो रहे ऋण को उनके स्टॉक की स्थिति की परवाह किए बिना खरीदी जाने वाली सूची में रखा गया ताकि रिज़र्व बैंक मीयाद पूरी होनेवाले ऋणों का रूपांतरण कर सके। श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार के डीलरों को अपने संविभागों का प्रबंध अधिक लचीले रूप में कर देने के लिए अधिक आजादी देने के विचार से यह आवश्यक समझा गया कि ऐसी परिस्थितियां निर्मित की जाएं जिनमें, निवेशक अपनी इच्छा की प्रतिभूतियां खरीद और बेच सके। द्वितीयक बाजार की स्थिति को देखते हुए इसके लिए अवसर सीमित ही थे। अतः रिज़र्व बैंक को यह उत्तरदायित्व लेना पड़ा कि वह विभिन्न निवेशक समूहों से आने वाली अलग-अलग प्रतिभूतियों की मांग को पूरा करे। इस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक हो गया कि खरीद और बिक्री के लिए अलग-अलग सूचियां रखने की परंपरा को समाप्त कर दिया जाए और तदनुसार रिज़र्व बैंक उन सभी प्रतिभूतियों को खरीदने और बेचने के लिए तैयार हुआ जिन्हें सामान्यतः खुले बाजार के परिचालनों के माध्यम से खरीदा बेचा जाता था।

सुधारोत्तर अवधि

6.67 1990 के बाद का दशक सरकारी प्रतिभूति बाजार के विकास की एक महत्वपूर्ण अवधि रही, जिसमें लिखतों, संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की दृष्टि से व्यापक सुधार किए गए। इस बाजार में एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी। जून 1992 में दिनांकित प्रतिभूतियों के लिए नीलामी प्रणाली की शुरुआत जिसमें सरकारी प्रतिभूतियों के लिए बाजार निर्धारित ब्याज दरों की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति स्थापित की । 1990 के दशक से पूर्व प्लेन बनीला (बिना किसी शर्त के) निश्चित कूपन बांड के साथ अधिकांश सरकारी बांड जारी किए जाते थे। सरकार के ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक के लिए एक बाध्यकारी उद्देश्य था सरकारी प्रतिभूतियों में ऐसी नई विशेषताएं लाना जो सरकार की वरीयताओं तथा बाजार दोनों के लिए बेहतर हो तथा साथ ही विकसित होती हुए बाजार की परिस्थितियों के भी अनुकूल हों। भारत में सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री पूर्व घोषित / खुली बिक्री दोनों आधारों पर की गई। नीलामियां भी विभेदकारी । विभिन्न दरों की तथा सीलबंद बोली के प्रकार की होती थीं। ''जो जीता यह उसका दुर्भाग्य'' जो कि विविध मूल्य की नीलामियों से जुड़ा हुआ था, विशेषकर 91 दिवसीय खजाना बिलों की समस्या को समाप्त करने तथा बाजार सहभागियों को व्यापक बनाने की दृष्टि से, इस संबंध में एक समान मूल्य वाली नीलामी पद्धति शुरू की गई। साथ ही साथ, भारी उधार कार्यक्रमों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने की दृष्टि से रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों का निजी स्थानन स्वीकार करता रहा है, तथा उन्हें उस समय जब बाजार की ब्याज दरें अनुकूल होने की आशा हो, उन्हें बाजार में जारी करता रहा है। बाजार का विकास करने के उपायों के एक भाग के रूप में, विभिन्न प्रकार के खजाना बिल जैसे - 14 दिवसीय, 91 दिवसीय, 182 दिवसीय, 364 दिवसीय परिपक्वता वाले खज़ाना बिल शुरू किए गए । दीर्घावधि परिपक्वतावाली। मुख्य लिखतें भी शुरू की गई जिनकी मुख्य विशेषता थी 1990 के बाद के दशक के दौरान विभिन्न जोखिमों से सुरक्षा प्राप्त करना तथा निवेशक की वरीयता के अनुकूल होना। दीर्घावधि बांडों के संदर्भ में नवोन्मेष भी शुरू किए गए, जैसे जीरो कूपन बांड (जनवरी 1994), सचल दर बांड (1995-96) तथा पूंजी सूचकांक बांड (दिसंबर 1997) । कॉल और पुट आप्शंस वाले बांड भी जारी किए गए।

6.68 सुधार की अवधि में सरकारी प्रतिभूति बाजार में संस्थागत सुदृढ़ीकरण की दिशा में प्रमुख प्रयास किए गए। सरकारी प्रतिभूतियों के लिए द्वितीयक बाजार के विकास के लिए भारतीय प्रतिभूति लेनदेन

निगम (एसटीसीआई) की स्थापना मई 1994 में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के साथ मिलकर रिज़र्व बैंक द्वारा संयुक्त रूप से की गई। वर्षों से जैसे ही बाजार उत्तरोत्तर रूप से विकास के उच्च स्तरों पर पहुंचा, रिज़र्व बैंक ने इस संस्था में अपनी धारिताओं को छोड़ दिया। दो तरफा भाव उद्धृत करने तथा बाजार का विकास करने के लिए मार्च 1996 में सरकारी प्रतिभूतियों में प्राथमिक व्यापारियों की प्रणाली भी शुरू की गई। जुलाई 1995 से सरकारी प्रतिभूतियों के लेनदेन में सुपुर्दगी बनाम भुगतान प्रणाली की शुरुआत की गई। पूर्णतः सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने के लिए समर्पित पारस्परिक निधियों को प्रोत्साहित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने चलनिधि समर्थन सुविधा पुनः शुरू की गई जो या तो केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों को सीधे या रिवर्स रेपो के माध्यम से खरीदने की प्रथा शुरू की गई। प्राथमिक व्यापारियों को सुरक्षा नेट या बाहर निकलने का रूट प्रदान करने की दृष्टि से, ताकि वे खजाना बिल बाजार में सक्रियतापूर्वक भाग ले सकें, रिज़र्व बैंक ने खुले बाजार के परिचालनों के माध्यम से, जिसमें पूर्णतः प्राथमिक व्यापारियों को ही जाने की अनुमति थी; फरवरी 2000 से शुरू की गई । तयशुदा लेनदेन प्रणाली (एनडीएस) 15 फरवरी 2002 से परिचालन में लाई गई जिसका उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ केंद्र / राज्य सरकार की प्रतिभूतियों की प्राथमिक नीलामियों तथा खुले बाजार के परिचालनों / चलनिधि समायोजन सुविधा की नीलामियों के लिए ऑनलाइन इलेक्ट्रानिक रूप में बिडिंग (बोली लगाने) के लिए प्लेटफार्म उपलब्ध कराना था।

6.69 सरकारी प्रतिभूतियों में निवेशक आधार 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों से व्यापक हुआ है जिसमें अब वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, बीमा कंपनियां, भविष्य निधियां, वित्तीय संस्थाएं (मीयादी ऋणदात्री संस्थाओं सहित), पारस्परिक निधियां, गिल्ट फंड, प्राथमिक व्यापारी, गैर बैंक वित्तीय कंपनियां तथा कंपनी संस्थाएं शामिल हैं। प्रारंभ में रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को मुख्यतः सरकार के उधार लेने के कार्यक्रम का समर्थन करने के लिए तथा खुले बाजार के परिचालनों को चलाने के लिए रखता था। मुख्यतः एसएलआर के कारण बैंक सरकारी प्रतिभतियों में प्रमुख निवेशक रहे हैं। तथापि, हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि बैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों में सांविधिक अपेक्षाओं से कहीं अधिक की राशि निवेशित की हुई है, जिसका आंशिक कारण है कि इनमें प्रतिलाभ की दर तुलनात्मक रूप से आकर्षक है, तथा पूंजी पर्याप्तता अनुपात की दृष्टि से इन निवेशों पर जीरो जोखिम भारांक दिए जाने के कारण, तथा अंशतः इसलिए कि वाणिज्यिक ऋण की अपेक्षाकृत मंदी मांग है। सरकारी प्रतिभूति बाजार का आकार बड़ा है और बढ़ रहा है। यह इस बात से प्रमाणित हो जाता है कि केंद्र सरकार की बकाया दिनांकित प्रतिभूतियों का स्तर 31 मार्च 2005 को रु. 8,953 बिलियन या सघउ के 28.9 प्रतिशत बैठता है।

6.70 सरकारी प्रतिभूति बाजार की कार्य-पद्धति को सुधारने की दृष्टि से सरकारी प्रतिभूति बाजार में की गई पहलें हैं :- (i) मई 1997 में नकदी और ऋण प्रबंध समूह की स्थापना जिसमें रिज़र्व बैंक तथा सरकार के अधिकारी शामिल हैं। इसने सरकार के उधार कार्यक्रम को व्यवस्थित तथा तर्कसम्मत बना दिया है। क्योंकि यह कार्यक्रम वित्तीय बाजारों को अस्थिर किए बिना पूरे किए जा सके। (ii) सरकारी प्रतिभूतियों में नीलामियां करने की प्रक्रिया को प्रगामी रूप से उन्नत बनाया जा रहा है जिसमें मूल्य आधारित तथा आय आधारित दोनों नीलामी प्रणालियों को मिला दिया गया है, इससे चलनिधि में सुधार हुआ है, ऋण के लिए मीयाद की अवधि को बढ़ाकर, तथा बेंचमार्क के उभरने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया गया है (iii) प्राथमिक व्यापारियों की संख्या 1996 में 2 से बढ़ाकर 2005 मे 17 करके संस्थागत बुनियादी संरचना को सुदृढ़ करना, तथा उन पर पूंजी-पर्याप्तता तथा अन्य विवेकसम्मत मानदंड लागू करके उन्हें कार्य रूप में मजबूत बनाना, (iv) बैंकों के निवेश संविभाग में मूल्यांकन मानदंडों में परिवर्तन कर दिया गया है। तथा (v) रिज़र्व बैंक ने सरकारी प्रतिभूतियों के लिए (अक्तूबर 2000 से) आय वक्र की घोषणा करने की प्रणाली से हट कर अब उस दैनिक आधार पर फिम्मड़ा द्वारा कराया जाता है।

6.71 सरकारी प्रतिभूति बाजार की कार्य पद्धति को सुधारने के लिए अन्य कई उपाय भी किए गए हैं। 14 दिवसीय तथा 182 दिवसीय खजाना बिल वापस ले लिए गए तथा उसके समानांतर रूप में 91 दिवसीय खजाना बिलों की घाषित राशि को बढ़ा दिया गया। 182 दिवसीय खजाना बिल अप्रैल 2005 में शुरू किए गए। इलैक्ट्रानिक बिडिंग को सुविधाजनक बनाने, द्वितीयक बाजार की लेनदेन तथा निपटान के लिए तथा तत्काल सकल निपटान के आधार पर लेनदेनों पर सूचना प्रसारित करने के लिए तयशुदा लेनदेन प्रणाली फरवरी 2002 में शुरू की गई। रिज़र्व बैंक ने इस प्रयोजन के लिए लोक ऋण कार्यालय का स्वैचालीकरण शुरू किया। सरकारी प्रतिभूतियों, खजाना बिलों, रेपो, विदेशी मुद्रा विनिमय वाले सभी लेनदेनों में, प्रतिपक्षी (पार्टी) के रूप में कार्य करने के लिए सीसीआइएल स्थापित किया गया। संपूर्ण प्रणाली नेटवर्क वाले परिवेश में कार्य करेगी और भारतीय वित्तीय नेटवर्क (इनफिनेट) संप्रेषण के लिए आधार भूमि प्रदान करेगा। अगस्त 2005 में, एक इलैक्ट्रानिक आर्डर मैचिंग ट्रेडिंग प्रणाली को एनडीए में शामिल किया गया ताकि सरकारी प्रतिभूतियों में बिना नाम के द्वितीयक बाजार के लेनदेन किए जा सकें।

6.72 सरकारी प्रतिभूति बाजार में राजकोषीय दायित्व तथा बजट प्रबंधन (एफआरबीएम) के परिवेश में रिज़र्व बैंक के सामने प्राथमिक चुनौती है प्रभावी ऋण प्रबंध कैसे सुनिश्चित किया जाए। प्राथमिक व्यापारियों को नीलामियों की पूरी हामीदारी का उत्तरदायित्व सौंपते हुए जैसा कि केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के बाजार संबंधी तकनीकी समिति

(जुलाई 2005) द्वारा सिफारिश की गई है, वित्तीय बाजारों में स्थिरता के हित में एक सुचारू रूप से अंतरण की योजना बनाई जानी है।

6.73 प्राथमिक व्यापारियों पर सौंपी गई भारी जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए, पीडी प्रणाली को प्रभावी बनाने की दृष्टि से उन्हें यथोचित प्रोत्साहन देकर उनकी प्रतिपूर्ति की जानी है, जैसे रेपो का निधियन, तथा नीलामियों में उनके पूर्णतः आबंटन जोकि पीडी प्रणाली वाले अधिकांश देशों में एक खास विशेषता है। शॉर्ट सेल की प्रथा के न होने के कारण यह प्राथमिक व्यापारियों की बाजार निर्माण की भूमिका को सीमित कर देती है क्योंकि बाजार जोखिम को सुरक्षित करने की उनकी योग्यता पर रोक लग जाती है। शॉर्ट सैलिंग पर तकनीकी समिति की सिफारिशें इस अंतराल को भर देंगी। इस संदर्भ में, मुख्य चुनौती यह सुनिश्चित करना है कि शॉर्ट सेलिंग के लाभ बेहतर और अधिक दक्ष मूल्य की खोज की प्रक्रिया की ओर ले जाते हैं, वहीं शॉर्ट सेलिंग के दबावों तथा स्टॉकों को अपने पास बनाए रखने के कारण अनावश्यक मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव को बचाया जाता है। साथ ही सुपुर्दगी की कमियों की स्थितियों से निपटने के लिए प्रभावी व्यवस्था कर ली गई है। प्राथमिक व्यापारियों से संबंधित तकनीकी समूह द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार रिज़र्व बैंक में प्रतिभूतियों को उधार लेने की एक खिड़की बनाया जाना इस दिशा में एक कदम हो सकता है।

6.74 'जब भी यदि यह जारी किया जाए' इसे 'ह्वेन इश्यूड' (डब्ल्यूआइ) (''जब जारी किया जाए'' के रूप में भी जाना जाता है) बाजार अनेक विकसित देशों में स्थापित हैं । सरकारी प्रतिभूतियों में 'ह्वेन इश्यूड' लेनदेन फ्यूचर्स मार्केट में लेनदेन जैसा कार्य करता है। जिसमें वस्तुतः इसके निपटान की तारीख से पहले इसके खरीदने बेचने की स्थितियां कई बार आ सकती हैं। एफआरबीएम परिवेश में, मुख्य नीलामियों में रिज़र्व बैंक की अनुपस्थिति मुख्य नीलामियों की खपत के लिए एक अधिक मार्केट प्रक्रिया तंत्र की जरूरत है। इस प्रकार 'ह्वेन इश्यूड' मार्केट इस प्रक्रिया तंत्र का एक आवश्यक अंग होगा और उसे सक्रिय रूप से प्रेरित किए जाने की जरूरत है।

6.75 1990 के बाद के दशक के उत्तरार्ध से रिज़र्व बैंक बाजार की गुणवत्ता को सुधारने की दृष्टि से विद्यमान प्रतिभूतियों को पुनः जारी करने की प्रक्रिया के माध्यम से निष्क्रिय रूप से समेकन की नीति का अनुसरण करता रहा है । आज की तारीख में केंद्र सरकार द्वारा जारी कुल 111 बकाया प्रतिभूतियों में से केवल 20 का आकार ही रु. 15,000 करोड़ या उससे अधिक का है। इस प्रकार, पुनर्निगम ने समेकन की कुछ मात्रा प्राप्त की है, अभी भी भारी संख्या में छोटे आकार की प्रतिभूतियां हैं और बहुत कम बाजार में बेची खरीदी जाती हैं। वर्तमान में, इनको सक्रिय रूप से समेकित करने की भारी जरूरत है जिसमें छोटे आकार की तरल आस्तियों को भारी संख्या में इनके धारकों से खरीदना होगा और इनके बदले में तरल आस्तियों को थोड़ी संख्या में जारी करना होगा। तथापि संरचनागत मुद्दे जैसे भारत में सरकारी प्रतिभूतियों को रखने का विषम तरीका तथा 'परिपक्वता तक धारित' श्रेणी में से प्रतिभूतियों को बेचने से बैंकों की बेलंस शीट पर पड़ने वाले प्रभाव से निपटना होगा।

बाजार की गतिविधियां

6.76 रिज़र्व बैंक द्वारा 1990 के बाद के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से किये गये विभिन्न उपायों की बदौलत सरकारी प्रतिभूति बाजार में मात्रा और तरलता दोनों दृष्टियों से भारी वृद्धि देखी गई। केंद्र सरकार की

सारणी 6.2 : भारत सरकार प्रतिभूति बाजार की संक्षिप्त झलक

मद	1992	1996	2002	2003	2004	2005
1	2	3	4	5	6	7
बकाया स्टॉक (रु. बिलियन में)	769	1,375	5,363	6,739	8,243	8,953
सघउ के अनुपात में बकाया स्टॉक (प्रतिशत)	14.68	14.20	27.89	27.29	30.09	28.94
कुल कारोबार /सघउ (प्रतिशत)	–	34.21	157.68	202.88	87.78	72.99
वर्ष के दौरान जारी प्रतिभूतियों की औसत मीयाद (वर्षों में)	–	5.70	14.90	15.32	14.94	14.13
वर्ष के दौरान जारी प्रतिभूतियों की भारांकित औसत लागत (प्रतिशत)	11.78	13.77	9.44	7.34	5.71	6.11
वर्ष के दौरान जारी प्रतिभूतियों की न्यूनतम आर अधिकतम मीयाद (वर्षों में)	उ.न.	2-10	5-25	7-30	4-29	5-30
कुल कारोबार में पीडी का अंश						
क. प्राथमिक बाजार			70.46	65.06	50.84	36.02
ख. द्वितीयक बाजार		–	22.04	21.72	24.25	26.7

* सीसीआइएल : भारतीय समाशोधन निगम लि.

टिप्पणी : टर्नओवर सीधी बिक्री (मात्रा*2) तथा रेपो (मात्रा *4) के कुल कारोबार का जोड़ है।

स्रोत : सरकारी प्रतिभूति बाजार पर आंतरिक तकनीकी समूह की रिपोर्ट 2005, भारतीय रिज़र्व बैंक।

चार्ट VI.3: क खजाना बिलों का आय वक्र

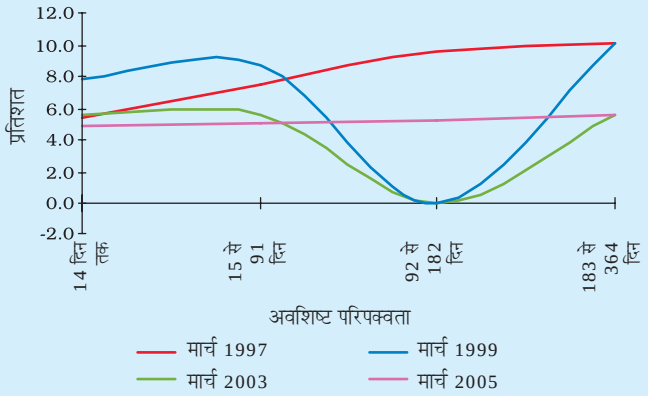

चार्ट VI.3: ख केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों का आय वक्र

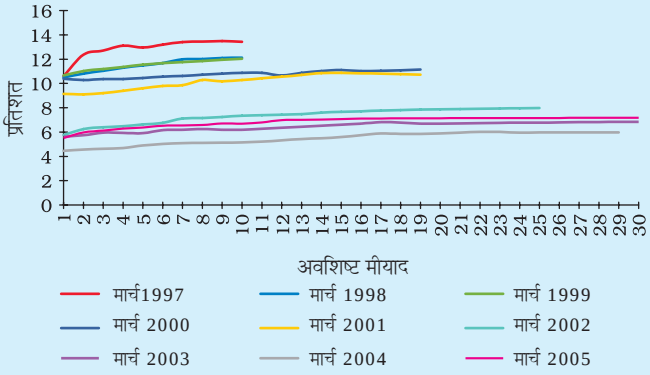

प्रतिभूतियों का बकाया स्टॉक 1992 से 2005 तक लगभग 12 गुना बढ़ गया है (सारणी 6.2)। सघउ के अनुपात की तुलना में उक्त अवधि के दौरान यह 14.7 प्रतिशत से दुगुना बढ़कर 28.9 प्रतिशत हो गया है। सरकारी प्रतिभूति बाजार में कुल कारोबार जो 1996 में सघउ का लगभग एक तिहाई था, तेजी से बढ़कर 2003 में सघउ के 200 प्रतिशत से ऊपर हो गया, परंतु उसके बाद 2005 में खिसककर 73 प्रतिशत रह गया इसका मुख्य कारण था हाल के वर्षों में ब्याज की दरों में वृद्धि।

6.77 सरकारी प्रतिभूति बाजार की एक उल्लेखनीय विशेषता सरकारी प्रतिभूतियों की मीयाद का लंबी होते जमा है जो 1996 के 5.7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2005 में 14.1 वर्षों की हो गई। गिरती हुई ब्याज दरों के परिवेश में रिज़र्व बैंक ने इनकी मीयाद को क्रमिक रूप से बढ़ाकर 30 वर्ष तक कर दिया जो 1990 के बाद के दशक में 10 वर्षों के दायरे में थी।

सारणी 6.3 : भारत सरकार के बाजार ऋणों के लिए भारांकित औसत आय तथा मीयाद

वर्ष	भारांकित औसत आय (नए ऋण) (प्रतिशत)	नए ऋणों की मीयाद का दायरा (वर्षों में)	भारांकित औसत मीयाद (नए ऋण) (वर्षों में)	बकाया स्टॉक की भारांकित औसत मीयाद (वर्षों में)
1	2	3	4	5
1995-96	13.75	2-10	5.7	उप. न.
1996-97	13.69	2-10	5.5	उप. न.
1997-98	12.01	3-10	6.6	6.5
1998-99	11.86	2-20	7.7	6.3
1999-00	11.77	5-20	12.6	7.1
2000-01	10.95	3-20	10.6	7.5
2001-02	9.44	5-25	14.3	8.2
2002-03	7.34	7-30	13.8	8.9
2003-04	5.71	4-29	14.94	9.78
2004-05	6.11	5-30	14.13	9.42

उप.न.: उपलब्ध नहीं।
स्रोत : सरकारी प्रतिभूति बाजार पर तकनीकी समूह की रिपोर्ट 2005, भारिबैंक ।

जारी प्रतिभूतियों की भारांकित औसत लागत जो 1992 (बाजार संबद्ध दर का पहला साल) में 11.8 प्रतिशत से बढ़कर 1996 में 13.8 प्रतिशत पर पहुंच गई, परंतु उसके बाद उसमें गिरावट आ गई और वह 2005 में गिरकर 6.1 प्रतिशत पर आ गई। विभिन्न कारकों जैसे दीर्घ अवधियों के लिए आय वक्र को विकसित करने की आवश्यकता तथा संभावित उन्मोचन दबाव को कम करने तथा जोखिम के पुनर्वित्त पोषण ने सरकारी प्रतिभूतियों के परिपक्वतास्वरूप को बढ़ाने की आवश्यकता पैदा कर दी।

6.78 ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक की मुख्य चिंता सरकार की उधार की लागत को न्यूनतम करना है। सामान्यतया ऊर्ध्वमुखी झुकाव वाले आय वक्र के साथ, प्रतिभूति की मीयाद की अवधि जितनी ही लंबी होगी, उतनी ही अधिक लागत होगी। इस प्रकार उधार की मीयाद और लागत के बीच सीधी संबंध है (मोहन 2004)। तथापि आम तौर पर 2003-04 तक गिरती हुई ब्याज दर के परिदृश्य देखे गए तथा प्रणाली में विद्यमान सुविधाजनक चलनिधि की स्थिति ने

सारणी 6.4 : सरकारी प्रतिभूति बाजार में द्वितीयक बाजार के लेनदेनों की मात्रा

वर्ष	सीधी खरीद का अंश (प्रतिभूति)	रेपो का अंश (प्रतिशत)	कुल (रु. बिलियन)
1	2	3	4
1996-97	76.40	23.60	1,229
1997-98	86.74	13.26	1,857
1998-99	82.53	17.47	2,272
1999-00	84.66	15.34	5,393
2000-01	81.95	18.05	6,981
2001-02	77.00	23.00	15,739
2002-03	71.20	28.80	19,557
2003-04	63.69	36.31	24,334
2004-05	41.09	58.91	21,894

स्रोत : सरकारी प्रतिभूति बाजार पर तकनीकी समिति की रिपोर्ट 2005, भारिबैं ।

सारणी 6.5 केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों का स्वामित्व (कुल में अंश)

(प्रतिशत)

धारकों की श्रेणी	1991	1992	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002	2003
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
भारतीय रिज़र्व बैंक (अपना खाता)	25	22	11	3	3	9	3	13	11	8	9	8	7
वाणिज्यिक बैंक	55	60	65	72	69	64	68	58	59	61	61	61	58
भारतीय जीवन बीमा निगम	13	15	16	17	17	18	20	19	18	18	19	20	19
भारतीय यूनिट ट्रस्ट	0	0	0	5	6	4	1	1	0	0	1	0	0
नाबार्ड	0	0	2	2	1	1	1	1	0	0	0	0	0
प्राथमिक व्यापारी	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	2	1	1
अन्य (ईपीएफ, कोल माइन्स पीएफ तथा अन्य)	7	3	6	1	4	4	7	9	11	12	8	10	13
कुल	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**

मार्च 2003 के अंत की बकाया पर आधारित

स्रोत : केंद्र सरकार के प्रतिभूति बाजार पर आंतरिक तकनीकी समूह की रिपोर्ट 2005, भारिबैं.

रिज़र्व बैंक को दोहरे उद्देश्य प्राप्त करने में सहायता की - नए ऋणों की मीयाद की अवधि को बढ़ाना तथा उधार लेने की लागत को कम करना (सारणी 63 तथा चार्ट VI.3 क और VI 3ख)। इन गतिविधियों ने बाजार में गहनता तथा ओज को दर्शाने के अलावा, रिज़र्व बैंक द्वारा निष्क्रिय ऋण प्रबंधन की जगह सक्रिय ऋण प्रबंधन को भी दर्शाया।

6.79 भारत में सरकारी प्रतिभूति बाजार में द्वितीय बाजार की बढ़ती हुई गतिविधियां एक उल्लेखनीय विशेषता है। 1996-97 से 2004-05 के बीच की अवधि में इनमें सत्रह गुनी वृद्धि हुई है (सारणी 6.4)।

6.80 सरकारी प्रतिभूति बाजार में लेनदेन जो देश में सभी एक्सचेंजों के इक्विटी घटकों में हुई संयुक्त लेनदेन से भी आगे निकल गई, वह बाजार की गहनता की संकेतक है (मोहन 2004) । यह प्रवृत्ति 2004-05 में पलट गई। सरकारी प्रतिभूतियों में वाणिज्यिक बैंकों की धारिता का अंश 1980 के बाद के दशक के दौरान तथा 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों में बढ़ना जारी रहा। मार्च 1998 के अंत में 58 प्रतिशत पर गिरने से पहले यह मार्च 1994 के अंत में 72 प्रतिशत के शिखर स्तर तक पहुंच गया (सारणी 6.5) । आज आकार, उत्पाद विविधता, गतिविधि तथा तकनीकी स्थिति की दृष्टि से भारतीय सरकारी प्रतिभूति बाजार आस्ति बाजार अर्थव्यवस्थाओं में सर्वोत्तम है (जाधव 2005)।

6.81 सभी विभिन्न मीयादों के लिए आय कमोवेश एक समान 1990 के बाद से बढ़ रही है (चार्ट VI.4)।

विदेशी मुद्रा बाजार

6.82 गत सात दशकों के दौरान विदेशी मुद्रा बाजार ने अत्यधिक निमंत्रित बाजार से उदार व्यवस्था की ओर महत्वपूर्ण रूपांतरण को

चार्ट VI.4 गिल्ट आय

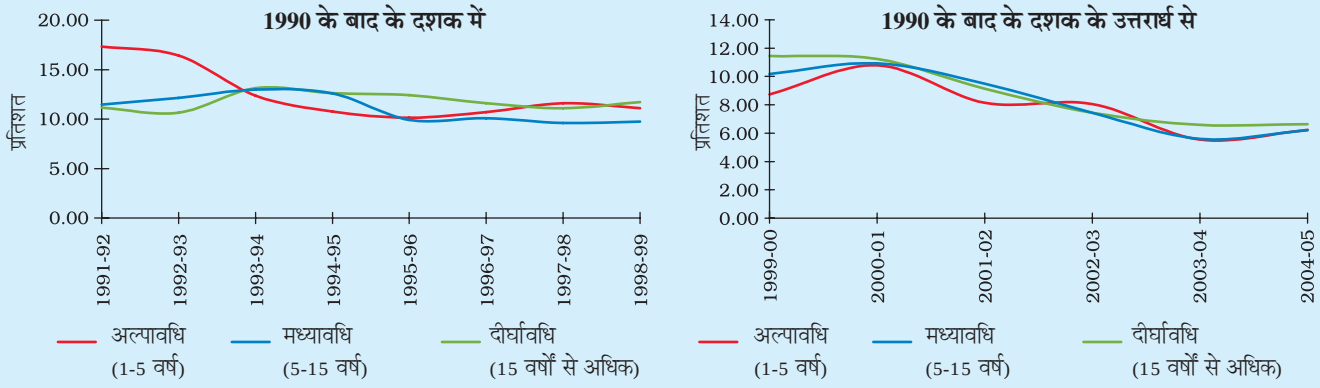

देखा है। विदेशी मुद्रा बाजार में मुख्यतया प्राधिकृत व्यापारी (एडी), जो अधिकांशतः बैंक हैं, निर्यातक और आयातक, अलग-अलग व्यक्ति तथा रिजर्व बैंक शामिल है। 1990 के पहले बाजार अत्यधिक नियंत्रित था। विदेशी मुद्रा भंडार की कमी को देखते हुए बैंक, निर्यातक तथा अलग- अलग व्यक्तियों को उनके द्वारा अर्जित / प्राप्त विदेशी मुद्रा रिज़र्व बैंक को सौंपनी पड़ती थी। भारत में विदेशी मुद्रा बाजार ने उत्तरोत्तर गहनता प्राप्त कर ली है और मार्च 1993 में बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर की प्रणाली में इसका रूपांतरण हो गया। उसके बाद विभिन्न बाह्य लेनदेनों पर लगे प्रतिबंधों का क्रमिक रूप से, परंतु पर्याप्त उदारीकरण किया गया।

6.83 विदेशी मुद्रा बाजार के विकास के लिए विनिमय दर निर्धारण की पद्धति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । अंतरराष्ट्रीय रूप से विनिमय दर व्यवस्था ने गत अनेक दशकों से महत्वपूर्ण परिवर्तन देखें हैं। ऐसी एक भी विनिमय दर व्यवस्था नहीं है, जिसे सभी देशों के लिए सभी समयों के लिए उपयुक्त माना जा सकता है। हालांकि विनिमय दर व्यवस्था का चयन करना देश विशेष तथा उसकी आकस्मिक परिस्थितियों पर तथा अन्य बातों के साथ-साथ व्यापक आर्थिक नीतियों पर निर्भर करता है, सारे विश्व में अब नमनीय/सचल दर व्यवस्था के पक्ष में सहमति बढ़ती जा रही है।

सुधार -पूर्व की अवधि (1930 से 1980 के बाद के दशक तक)

6.84 उपर्युक्त अवधि के दौरान भारत के विदेशी मुद्रा बाजार में गहनता और तरलता की कमी थी। विदेशी मुद्रा नियंत्रण तथा विदेशी मुद्रा विनिमय दर की व्यवस्था विदेशी मुद्रा बाजार के विकास में आड़े आई। 1930 से 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों से विदेशी मुद्रा विनिमय दरों में भारी विविधता रही। 'स्टर्लिंग क्षेत्र'[4] की व्यवस्थाओं के बाद (1974 तक) मुद्रा का बाह्य मूल्य 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में दो चरणों में विनिमय दर में उदारीकरण किए जाने तक मुद्रा समूह के अनुसार निर्धारित किया जाता था । द्वितीय विश्व युद्ध के छिड़ जाने के बाद मुख्यतः गैर स्टर्लिंग क्षेत्र की करेंसियों को बनाए रखने तथा उन्हें अनिवार्य प्रयोजनों के लिए उपयोग में लगाने की दृष्टि से 3 सितंबर 1939 से भारत में विदेशी मुद्रा नियंत्रण शुरू किया गया। विदेशी मुद्रा नियंत्रण का उद्देश्य मुख्यतया विभिन्न प्रयोजनों के लिए विदेशी मुद्रा की मांग को इसकी उपलब्ध आपूर्ति की सीमाओं में विनियमित करना था । इस प्रकार यह विदेशी मुद्रा के लिए विभिन्न प्रतिस्पर्धी मांगों के बीच विदेशी मुद्रा की आपूर्ति की राशनिंग करना था।युद्ध की समाप्ति के चरणों में यह स्पष्ट हो गया कि विदेशी मुद्रा के संसाधनों को सर्वाधिक विवेकसंमत रूप में उपयोग करने के लिए युद्धोत्तर अवधि में भी विदेशी मुद्रा लेनदेनों पर नियंत्रण जारी रखना होगा। अतः यह निर्णय लिया गया कि यह नियंत्रण सांविधिक आधार पर लागू किया जाए और तदनुसार विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 बनाया गया। उक्त अधिनियम जो 25 मार्च 1947 का लागू हुआ प्रारंभ में पांच वर्ष की अवधि के लिए वैध था तथा 1952 में इसे और पांच साल के लिए बढ़ा दिया गया। 1957 में इसे स्थायी आधार पर लागू कर दिया गया। उक्त अधिनियम ने रिज़र्व बैंक को तथा कुछ मामले में केंद्र सरकार को यह अधिकार दिया कि वे भारत से बाहर विदेशी मुद्रा में लेनदेन, करेंसी नोटों और सोना चांदी के निर्यात और आयात, निवासियों और अनिवासियों के बीच प्रतिभूतियों के अंतरणों, विदेशी प्रतिभूतियों के अभिग्रहण आदि को नियंत्रित और विनियमित कर सकते हैं । बाद में उक्त अधिनियम के स्थान पर एक अधिक व्यापक विधान अर्थात विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम 1973 (फेरा) लागू किया गया।

6.85 इस नियंत्रित व्यवस्था के दौरान नीति का मुख्य जोर 1990 से पहले मुख्यतः भारत के आयातों को सुविधाजनक बनाने के लिए विनिमय दर का प्रबंधन करना था। फेरा के माध्यम से विदेशी मुद्रा भंडार पर कठोर नियंत्रण की एक अनिश्चित (संदिग्ध) विशेषता विश्व में विदेशी मुद्रा के लिए सबसे बड़े तथा सर्वाधिक दक्ष समानान्तर बाजारों अर्थात् हवाला (अनाधिकारिक) बाजार का निर्माण रही (तारापोर 2000)।

कानूनी आधार

6.86 विदेशी मुद्रा भंडार के प्रबंधन के प्रयोजन के लिए रिज़र्व बैंक को भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 17 (3) (क) के अंतर्गत अनुसूचित बैंकों से /को विदेशी मुद्रा खरीदने और बेचने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। धारा 40 सरकार को अधिसूचनाएं वे दरें निर्धारित करती हैं जिन पर रिज़र्व बैंक बिना किसी सीमा के स्टर्लिंग (या अन्य विदेशी मुद्राएं) खरीदने और बेचने के लिए बाध्य था। तथापि प्राधिकृत व्यापारियों के साथ रिज़र्व बैंक के दैनिक परिचालन उक्त अधिनियम की धारा 173) से ली गई शक्तियों के अंतर्गत संचालित किए जाते थे। इसकी दरें निर्धारित मार्जिनों के अंदर समय-समय पर निर्धारित की जाती थीं। इस धारा के अंतर्गत रिज़र्व बैंक द्वारा खरीदी गई विदेशी मुद्राएं थीं - पौंड स्टर्लिंग, अमरीकी डालर (अक्तूबर 1972 से) ड्यूश मार्क (मार्च 1974 से), तथा जापानी येन (मई 1974 की समाप्ति से)। तथापि पौंड-स्टर्लिंग ही केवल वह करेंसी थी जो फरवरी 1993 तक रिजर्व बैंक द्वारा बेची जाती थी, क्योंकि यह मध्यस्थक मुद्रा थी। इसके बाद अमरीकी डालर मध्यस्थक मुद्रा हो गई ।

[4] स्टर्लिंग क्षेत्र में मुख्यतः ब्रिटिश सामाज्य के देश शामिल थे जो ऐतिहासिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से ब्रिटेन के साथ बंधे हुए थे तथा जिनकी करेंसियों के मूल्य पौंड स्टर्लिंग पर आधारित थे। इस व्यवस्था का उद्देश्य था, स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्यों के उपयोग के लिए गैर स्टर्लिंग क्षेत्र की करेंसियों का एक केंद्रीय भंडार बनाना तथा जिसे ब्रिटेन द्वारा अपने स्वामित्व में लेना और उसका परिचालन करना था।

6.87 1960 के बाद के दशक के अंतिम वर्षों में स्टर्लिंग क्षेत्र के अधिकांश देशों ने, जिनमें भारत भी शामिल था, स्टर्लिंग के विनिमय मूल्य में होनेवाली घटबढ़ से होनेवाली हानियों के जोखिम को व्यापक आधार देने की दृष्टि से अपने विदेशी मुद्रा भंडार को विशाखीकृत करना शुरू कर दिया। स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों की ओर से स्टर्लिंग की धारिता को कम करने के दौरान ब्रिटेन के भुगतान संतुलन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने से रोकने के लिए ब्रिटेन की सरकार अधिकांश स्टर्लिंग मुद्रा का भंडार अपनी मुद्रा के अमरीकी डालर मूल्य बनाए रखना था इस गारंटी के बदले में स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों ने यह वचन दिया कि वे अपनी कुल आधिकारिक बाह्य रिज़र्व को जिसे न्यूनतम स्टर्लिंग अनुपात के रूप में जाना था, हमेशा स्टर्लिंग में रखेंगे। इन व्यवस्थाओं में यह भी अपेक्षा की गई है कि स्टर्लिंग क्षेत्र के देश अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआइएस) के पास अपने रिज़र्वों गैर स्टर्लिंग मुद्राओं के एक भाग में स्वैच्छिक रूप से रखेंगे।

6.88 जब तक भारत 'स्टर्लिंग क्षेत्र' के रूप में जाने जानेवाले देशों के समूह का एक सदस्य रहा, जिसका ब्रिटेन एक केंद्रवर्ती देश था, भारत को अपनी विदेशी मुद्रा आस्तियों का लगभग संपूर्ण भाग स्टर्लिंग में रखना पड़ा, इन स्टर्लिंग जमाराशियों के बदले में गैर स्टर्लिंग क्षेत्र की विदेशी मुद्रा अस्तियों की करेंसियों को ब्रिटेन को अंतरित किया जा रहा था। 23 जून 1972 से जब पौंड स्टर्लिंग मुद्रा चलाई गई, तो ब्रिटेन के प्राधिकारियों ने स्टर्लिंग क्षेत्र को ब्रिटेन, चेनल आईलैंड, मान आईलैंड, रिपब्लिक ऑफ आयरलैंड तक सीमित कर दिया तथा जिब्राल्टर को विदेशी मुद्रा नियंत्रण के प्रयोजनों के लिए तथा अन्यों को अनिवासी के रूप में नामित किया।

6.89 भारत के साथ यह करार जो प्रारंभ में तीन वर्षों की अवधि के लिए था, आवधिक रूप से बढ़ाया जाता रहा, जबतक कि 31 दिसंबर 1974 को समाप्त नहीं कर दिया गया। इसके बाद विदेशी मुद्रा भंडार की प्रक्रिया तेज हो गई थी। 4 अक्तूबर 1975 से रिज़र्व बैंक ने हाजिर अमेरिकी डालरों की खरीद और बिक्री की दरें घोषित करना बंद कर दिया तथा किसी विदेशी मुद्रा को बेचना भी बंद कर दिया। तथापि रिज़र्व बैंक ने प्राधिकृत व्यापारियों से अमरीकी डालर खरीदना जारी रखा।

6.90 जुलाई 1978 में, रिज़र्व बैक अधिनियम, 1934 में सांविधिक प्रावधानों का संशोधन किया गया तथा 1975 से लगातार बढ़ते हुए विदेशी मुद्रा भंडार का और भी प्रभावी ढंग से उपयोग करने में समर्थ बनाने की दृष्टि से इसे व्यापक बनाया गया। रिज़र्व बैंक यूएसडालर, पौंड स्टर्लिंग, ड्यूश मार्क और येन 12 माह तक की अलग-अलग अवधियों के लिए हानि और वायदा दोनों की खरीद करता रहा। परंतु पौंड स्टर्लिंग तथा डालर को केवल हाजिर दर पर बिक्री की। पौंड स्टर्लिंग की खरीदने और बेचने की रिज़र्व बैंक की दरों में निम्नतम तथा उच्चतम दरों का काम किया तथा अंतरबैंक बाजार इन दरों के अंदर रहा।

6.91 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक, निश्चित दर की प्रणाली को देखते हुए विदेशी मुद्रा बाजार को व्यापारिक लेनदेन करने की प्रक्रिया-तंत्र के रूप में मान लिया गया। ब्रिटेन वुड्स करार टूट जाने तथा प्रमुख करेंसियों के जारी किए जाने से विदेशी मुद्रा विनिमय दर प्रणाली का संचलन करना केंद्रीय बैंकों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया, क्योंकि करेन्सी दरों में उतार-चढ़ाव ने बाजार के खिलाड़ियों के लिए करेंसी के भारी उतार चढ़ाव में लेनदेन करने के लिए सीमाहीन बाजार में जबरदस्त अवसरों के द्वार खोल दिए । (सोढ़ानी 1995)। तथापि भारत में विदेशी मुद्रा बाजार विदेशी मुद्रा नियंत्रणों के कारण, अपेक्षाकृत सुरक्षित बना रहा जिसमें पूंजी के प्रवाहों को रोके रखा गया, तथा इसके अलावा बैंकों से यह अपेक्षित था कि वे केवल कवर परिचालन करें और सभी समयों पर असुरक्षित विदेशी मुद्रा की शून्य या शून्य के आसपास स्थिति बनाए रखें।

6.92 जैस-जैसे मांग बननी शुरू हुई, भारत में बैंकों को रिजर्व बैंक द्वारा 1978 में यह अनुमति दी गई कि वे विदशी मुद्रा में दिनभर के लिए लेनदेन कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप शून्य या लगभग शून्य असुरक्षित स्थिति बनाए रखने की शर्त प्रत्येक दिन कारोबार की समाप्ति पर ही पूरी करनी पड़ती थी। विदेशी मुद्रा की मात्रा की यह स्थिति जिसे रात्रिभर के लिए असुरक्षित (खुली स्थिति) रखी जा सकती थी, तथा वे सीमाएं जिन तक व्यापारी दिन के अंदर लेनदेन कर सकते थे, का निर्धारण बैंकों के प्रबंध तंत्र द्वारा किया जाना होता था।

6.93 जैसे-जैसे लाभ कमाने के अवसर उभरने लगे, प्रमुख बैंकों ने रुपयों के प्रति तथा विभिन्न करेंसियों (अर्थात् यूरो करंसियों) के लिए दुतरफा भाव उद्धृत करने प्रारंभ कर दिए और धीरे धीरे व्यापार की यात्रा बढ़ने शुरू हो गई। इसको 1975 में विदेशी मुद्रा दर की प्रणाली में किए गए परिवर्तन से सहायता मिली । जहां रुपए को पौंड स्टर्लिंग से मुक्त कर दिया गया तथा प्रबंधित सचल दर करारों के अंतर्गत रुपए का बाह्य मूल्य रिज़र्व बैंक द्वारा भारत के प्रमुख बाजार सहभागियों की भारांकित मुद्रा समूह के अनुसार निर्धारित किया जाता था। मध्यस्थक मुद्रा अर्थात् पौंड स्टर्लिंग की असीमित मात्रा में खरीदने और बेचने के रिज़र्व बैंक के दायित्व के कारण जो कि बैंकों की व्यापारिक खरीदारियों से उठ रही थी, इसकी खरीदने/बेचने की दरें प्रभावी आधार बन गईं जिनके आसपास बाजार चलने लगा।

6.94 जैसे-जैसे परिमाण में वृद्धि हुई तथा लाभ के उद्देश्य ने विभिन्न प्रकार की परंपराएं शुरू करा दीं (जिनमें से कुछ अनियमित भी थीं) तो विदेशी मुद्रा लेनदेन में संलग्न बैंकों द्वारा अपनाए जानेवाली संपूर्ण डीलिंग परिचालनों के लिए मार्गदर्शी दिशानिदेशों के व्यापक सेट की आवश्यकता अनुभव हुई। तदनुसार बैंकों द्वारा अपनाए जाने के लिए 1981 में विदेशी मुद्रा कारोबार पर आंतरिक नियंत्रण के लिए मार्गदर्शी दिशा निदेश बनाए गए।

6.95 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में बिगड़ती हुई व्यापक आर्थिक स्थिति ने विदेशी मुद्रा विनिमय दर की व्यवस्था में संरचनागत बदलाव की आवश्यकता जताई। जिसका विदेशी मुद्रा बाजार पर प्रभाव पड़ा। भारी और निरंतर बाह्य असंतुलन बाध्य ऋणग्रस्तता के बढ़ते हुए स्तरों में लक्षित हुई। रुपए की विनिमय दर उत्तरोत्तर विसंगतिपूर्ण होती गई। यह स्थिति क्रमिक रूप से प्रमुख करेंसियों की तुलना में वास्तव में अवमूल्यन किए जाने के बावजूद रही। जुलाई 1990 में खाड़ी युद्ध, अर्थव्यवस्था की कमजोर स्थिति ने चलनिधि और विश्वास के अभूतपूर्व संकट को जन्म दिया जिसने असाधारण दोष निवारक उपाय किए जाने की मांग की, देश ने इसके साथ ही साथ वृद्धि के लिए प्रेरणाएं उत्पन्न करने के लिए स्थिरीकरण और संरचनागत सुधारों की प्रक्रिया को अपना लिया था।

सुधार / सुधारोत्तर अवधि (1990 के बाद से)

6.96 इस चरण में विनिमय दर के उदारीकरण के अलावा, बाजार को व्यापक और गहन बनाने के लिए व्यापक दायरे वाले उपाय किए गए। विदेशी मुद्रा बाजार के सुधार के लिए प्रेरणाएं रंगराजन समिति (1992), सोढ़ानी समिति (1995), तथा तारापोर समिति (1997) द्वारा उपलब्ध कराई गई। विदेशी मुद्रा बाजार को दी गई महत्ता विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (फेमा 1999) की उद्देश्यिका से पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। फेमा का एक मुख्य उद्देश्य है - 'भारत में विदेशी मुद्रा बाजार का व्यवस्थित विकास करना'।

6.97 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में भारत में विदेशी मुद्रा बाजार विकास के प्रारम्भिक चरणों में था तथा उसमें अनेक कमियां थीं। हाजिर तथा वायदा बाजारों में गहनता तथा तरलता की कमी थी, बाजार अधिकांश वणिक कारोबार के लिए कुछ थोड़े से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों से तथा अधिकांश अंतरबैंक वणिक कारोबार के लिए विदेशी बैंकों पर निर्भर रहने के कारण सुचारू रूप से नहीं चल रहा था। वायदा दरें मांग और आपूर्ति को दर्शाती थीं, न कि मुद्रा और विदेशी बाजारों के बीच समन्वय के अभाव तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में उधार लेने/देने पर लगे प्रतिबंधों के कारण ब्याज दर अंतरालों को । खुली स्थिति तथा अंतराल पर उच्चतम सीमाओं के कारण बाजार निर्माण की संभावनाओं का वास्तव में अभाव था। विदेशी बाजारों में लेनदेन शुरू करने पर प्रतिबंध के कारण विभिन्न मुद्राओं में विनिमय बाजार विकसित नहीं हो सका था। वायदा संविदा तथा विभिन्न मुद्राओं में विनिमय विकल्पों के अलावा, अन्य हेजिंग उत्पादों के लिए मुक्त रूप से पैठ भी नहीं उपलब्ध थी। अतः सोढ़ानी समिति ने यह सिफारिश की थी कि विदेशी मुद्रा बाजार को विकसित करने के किसी भी प्रयास को अनिवार्यतः इन मुद्दों को संचालित करने वाले विनियमनों में ढील देना शुरू करना चाहिए।

6.98 विदेश व्यापार तथा विदेशी निवेश संबंधी नीतियों में बदलावों के साथ-साथ, विदेशी मुद्रा विनिमय दर प्रबंध के संबंध में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। प्रबंधित सचल प्रणाली से, जिसके अंतर्गत विनिमय दर का आधिकारिक रूप से निर्धारण किया जाता था, अनेक चरणों से गुजरते हुए यह व्यवस्था बाजार पर आधारित प्रणाली पर पहुंची, जिसके अंतर्गत विनिमय दर मांग और आपूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित की जाती है, (रंगराजन 2000) । रुपए की विनिमय दर के संबंधित नीति में 1991 में अमूल चूल परिवर्तन किए गए। पहले, रुपए की विनिमय दर का 1 जुलाई और 3 जुलाई 1991 को दो चरणों में अवमूल्यन किया गया। मध्यस्थक मुद्रा अर्थात पौंड स्टर्लिंग की तुलना में इन दो चरणों में किए गए निम्नमुखी समायोजन 17.38 प्रतिशत बैठते हैं। इसके बाद रुपया विनिमय दर को रुपया अमरीकी डालर के विनिमय दर से बांध दिया गया, जो 26 रु. प्रति डालर था। दूसरे, 1 मार्च 1992 को रुपए की आंशिक परिवर्तनीयता दोहरी विनिमय दर प्रणाली के रूप में जिसे उदारीकृत विनिमय दर प्रबंध प्रणाली (लर्म्स) कहा गया, व्यापार, उद्योग, विदेशी निवेश तथा सोने के आयात के क्षेत्रों में किए गए उदारीकरण के अन्य उपायों के साथ-साथ शुरू की गई। इस प्रणाली में चालू खाता लेनदेनों (निर्यात, विप्रेषण आदि) में प्राप्त सभी विदेशी मुद्रा को पूर्णतः प्राधिकृत व्यापारियों को सौंपना होता था। इन लेनदेनों को प्राप्त आय के परिवर्तन के 60 प्रतिशत की विनिमय दर बाजार दर होती थी जो प्राधिकृत व्यापारियों द्वारा उद्धृत की जाती थी, जबकि शेष 40 प्रतिशत आय को रिजर्व बैंक की आधिकारिक दर पर परिवर्तित किया जाता था। इसके बदले में प्राधिकृत व्यापारी विदेशी मुद्राओं की अपनी कुल खरीद की चालू प्राप्तियों का 40 प्रतिशत रिज़र्व बैंक द्वारा घोषित आधिकारिक विनिमय दर पर रिज़र्व बैंक को सौंपना होता था। शेष 60% विदेशी मुद्रा को वे अपने पास रखकर अनुमत लेनदेनों के लिए खुले बाजार में बेचने के लिए स्वतंत्र होते थे।

6.99 संक्रमणकालीन व्यवस्था के रूप में लर्म्स ने रुपए के बाह्य मूल्य को स्थिरता प्रदान करने तथा लेनदेनों की बढ़ी हुई मात्रा के लिए एक संकीर्ण अंतरबैंक विदेशी मुद्रा बाजार को बनाने की भूमिका निभाई। तथापि इसमें दोहरी विनिमय दर प्रणाली विद्यमान थी तथा निर्यात आय को सौंपने पर इन दोनों दरों के बीच के अंतराल पर निर्यात कर निहित था। साथ ही इस प्रणाली को लंबे समय तक बनाए नहीं रखा जा सका। क्योंकि इसमें कुल आयातों के बीच सब्सीडी के साथ प्राप्त विदेशी मुद्रा के लिए राशनिंग की मांग की गई थी, इससे संसाधनों के आबंटन में अनिवार्यतः विकृतियां पैदा हो गई। जैसे-जैसे इसे लागू रखा गया, तो ऐसे संकेत मिलने शुरू हो गए कि इनके विप्रेषण अपने सामान्य पथ से हटकर पूंजी खाते में जाने लगे क्योंकि कुछ अनिवासी रुपया जमाखातों में आगमों की बाजार दर पर पूर्णतः प्रत्यावर्तन की अनुमति थी, जबकि चालू खाते के रूप में विप्रेषणों को केवल 60 प्रतिशत के ही बाजार दर

पर प्रत्यार्वन की अनुमति थी। दिसंबर 1992 के प्रारंभ में आधिकारिक विनिमय दर में निम्नमुखी समायोजन किया गया तथा अंततः दोहरी विनिमय दर प्रणाली को मिलाकर एकल दर 1 मार्च 1993 से प्रभावी की गई। तथाकथित संशोधित लर्म्स की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित थीं:

(i) सभी विदेशी मुद्रा प्राप्तियां 2 मार्च 1993 से बाजार द्वारा निर्धारित दरों पर बदली जाती थीं।

(ii) विनिमय दरों को एक कर देने से (एकल विनिमय दर) चालू खाते में परिवर्तनीयता की ओर एक महत्वपूर्ण प्रगति हुई। मुक्त रूप से जारी की जानेवाली विनिमय दर व्यवस्था विदेशी मुद्रा नियंत्रण के ढांचे के अंदर चलती रही। चालू प्राप्तियां बैंकों को सौंपनी होती थी, जिससे अनुमतियोग्य प्रयोजनों के लिए विदेशी मुद्रा की मांग को पूरा किया जाता था। ये लेनदेन जिन दरों पर किए जाते थे, उनका निर्धारण बाजार द्वारा किया जाता था।

(iii) प्राधिकृत व्यापारियों को बेची गई विदेशी मुद्रा का कोई भी भाग अब रिज़र्व बैंक को नहीं सौंपनी होती थी, तथापि रिज़र्व बैंक अपने विवेक पर विदेशी मुद्रा की खरीद /बिक्री के लिए बाजार में जा सकता था। भारत सरकार की ऋण संबंधी देयताओं की चुकौतियों से इतर किसी अन्य प्रयोजन के लिए विदेशी मुद्रा को बेचने का रिज़र्व बैंक का दायित्व अब बदल गया था। यह अब केवल अमरीकी डालर की खरीद/बिक्री करता था जिसने मार्च 1993 में मध्यवर्ती मुद्रा के रूप में पौंड स्टर्लिंग का स्थान ले लिया था। मार्च 2002 से यूरो एक अतिरिक्त मध्यवर्ती मुद्रा हो गई।

(iv) 4 अक्तूबर 1995 से रिज़र्व बैंक ने अपनी बिक्री / खरीद की दरें देना बंद कर दिया। वर्तमान में, रिज़र्व बैंक मुंबई में प्रतिदिन दोपहर 12 बजे के समय पर कुछ चुनिंदा बैंकों द्वारा दी गई दरों के आधार पर संदर्भ दर उद्धृत करता है। अन्य बातों के साथ-साथ रिज़र्व बैंक की दर विशेष आहरण अधिकारों के लेनदेनों पर लागू होती हैं।

(v) यह सुनिश्चित करने के लिए कि रुपए की विनिमय दर मांग आपूर्ति की स्थिति को पूर्णतः दर्शाए, तथा साथ ही वह प्रारक्षित निधियों के माध्यम से लेनदेन को समाप्त कर दे इस दृष्टि से यह निर्णय लिया गया कि 3 जुलाई 1995 से भारत सरकार के ऋण चुकौतियों संबंधी अदायगी (सिविल) को बाजार के माध्यम से भेजे।

6.100 चालू खाते के लेनदेनों को तथा पूंजी खातों में अनेक लेनदेनों को विदेशी मुद्रा विनियमनों तथा नियंत्रणों से मुक्त कर दिया गया। अब भारत में सचल दर विद्यमान है। जिसमें निश्चित दर का कोई भी लक्ष्य निश्चित नहीं किया गया है। दैनिक घटबढ़ की रिज़र्व बैंक बड़ी घनिष्ठतापूर्वक निगरानी करता है। भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार अपेक्षाकृत पतला है और रिज़र्व बैंक की घोषित नीति है अस्थायी तौर पर उठी मांग आपूर्ति के असंतुलनों को पूरा करना। इसका उद्देश्य है बाजार को व्यवस्थित बनाए रखना तथा यह सुनिश्चित करना कि बाजार में तरलता संबंधी कोई समस्या, अफवाह या भय से प्रेरित तीव्र उतार चढ़ाव न हो (जालान 2000) । जहां देश का केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करता है तो ऐसा करने के पीछे इसका मुख्य उद्देश्य तीव्र उतार चढाव तथा अस्थिरता को रोकना होता है (रंगराजन 2000)।

6.101 विदेशी मुद्रा बाजार में गहनता और तरलता की कमी को देखते हुए इसका उद्देश्य अपूर्णताओं को दूर करना था। भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार को व्यापक तथा गहन बनाने तथा इसे वैश्विक वित्तीय प्रणाली से संबद्ध करने के लिए किए गए प्रमुख उपाय थे : **(i)** बैंकों को रात्रिभर के लिए असुरक्षित निवल स्थिति तथा अंतराल की सीमा निर्धारित करना, (रिज़र्व बैंक औपचारिक रूप से सीमाओं का अनुमोदन करता है;) ओवरसीज बाजारों में ट्रेडिंग स्थितियों की शुरुआत करना; ब्याज दरों का निर्धारण करना । उच्चतम सीमा के अधीन तथा एफसीएनआर(बी) जमाराशियों के लिए परिपक्वता अवधि निश्चित करना। (3 वर्ष से अधिक नहीं) जिसमें सांविधिक पूर्व-क्रयों से अंतरबैंक खरीदों पर सांविधिक पूर्वक्रय को छोड़कर तथा आस्ति देयता प्रबंधन डेरिवेटिव उत्पादों का उपयोग करना । ; **(ii)** देशी और विदेशी मुद्रा बाजारों को समन्वित करने को सहज बनाने की दृष्टि से विवेक-सम्मत उपाय के रूप में अपने पूंजीगत आधार को बढ़ाने के संबंध में प्राधिकृत व्यापारियों को विदेशों से उधार लेने की अनुमति दी गई। प्राधिकृत व्यापारियों को अपनी विदेशी शाखाओं और प्रतिनिधि कार्यालयों से अपनी भार-रहित टीयर I पूंजी के 15 प्रतिशत तक या 10 मिलि.अम डालर या इसके समकक्ष जो भी उच्चतर हो, ऋण, ओवरड्राफ्ट तथा अन्य प्रकार की निधि आधारित ऋण सुविधाएं लेने की अनुमति दी गई। इन निधियों का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए विदेशी मुद्रा में ऋण देने के अलावा करने की अनुमति दी गई। प्राधिकृत व्यापारियों को इन सीमाओं को पार करने की भी नमनीयता भी दी गई जो पूर्णतः उनके अपने सामान्य कारोबारी परिचालनों के लिए भारत में अपने रुपया ऋणों की प्रतिपूर्ति करने के लिए होगा न कि इसे मांग मुद्रा या अन्य बाजारों में विनियोजित करने के लिए। **(iii)** कंपनियों को अपने विदेशी मुद्रा जोखिमों का प्रबंधन करने के लिए पर्याप्त आजादी प्रदान की गयी । हालांकि उनको संभावित जोखिमों को सुरक्षित करने के लिए अनुमति दी गई थी, परंतु इस सुविधा को एशियाई संकट के बाद अस्थायी रूप से रोक दिया गया था। विदेशी मुद्रा अर्जकों के विदेशी मुद्रा खातों (ईईएफसी) की पात्रता को भी तर्कसम्मत बनाया गया। विभिन्न जोखिम प्रबंधन की रणनीतियों की कंपनियों को अनुमति दी गई है। जैसे वायदा संविदाओं को निरस्त करना तथा पुनः बुक करना, हालांकि वर्तमान में निरस्त संविदाओं को पुनः बुक करने की परम्परा निरस्त कर दी गई है, जबकि रोलओवर की अनुमति दी गई है। अन्य जोखिम प्रबंध के साधनों, विवेकसम्मत अपेक्षाओं के अंतर्गत, की अनुमति दी गई है जैसे प्रति मुद्रा विकल्प, दुतरफा ऋण के प्रति ऋण आधार पर । निम्नतर लागत विकल्प रणनीतियां जैसे दायरा वायदा, तथा अनुपात दायरा वायदा तथा अन्य रणनीतियों

चार्ट VI.5 : विदेशी मुद्रा बाजार में कुल कारोबार

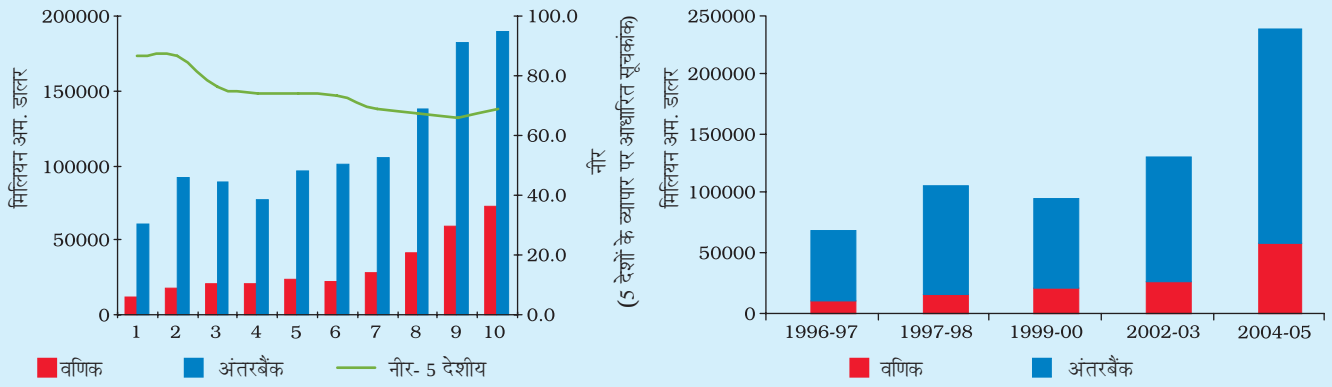

तथा बाह्य वाणिज्य उधार जोखिमों को सुरक्षित करने के लिए रणनीतियां बनाने की अनुमति दी गई है। बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर व्यवस्था में, ग्राहकों तथा प्राधिकृत व्यापारियों का व्यवहार विनिमय दर की गतिविधियों के काफी सीमा तक प्रभावित करता है। सीसीआइएल, जिसने अंतरबैंक अमरीकी डालर/ भारतीय रुपए के हाजिर / वायदा दरों को नवंबर 2002 से तथा अंतरबैंक अमरीकी डालर/ भारतीय रुपए के नकदी और टॉम ट्रेड के फरवरी 2004 से निपटारा विदेशी परिचालनों को निपटाना शुरू कर दिया था। इस अवधि में विदेशी मुद्रा बाजार का देशी वित्तीय बाजारों से तथा वैश्विक बाजारों के साथ मेहत्तर समेकन देखा गया।

6.102 विदेशी मुद्रा बाजार पर तकनीकी समूह (2005) ने वर्तमान विनियमों को और उदार बनाने के लिए अनेक सिफारिशें की हैं। इनमें से कुछ सिफारिशें जैसे किसी भी मीयाद के लिए वायदा संविदा को निरस्त करना तथा उसे पुनः बुक करने की छूट, कंपनियों के अंतरराष्ट्रीय कमोडिटी एक्सचेंजो/बाजारों में अपने कमोडिटी मूल्य जोखिमों के लिए सुरक्षा प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत व्यापारियों को अनुमति देने की शक्तियों का प्रत्यायोजन तथा अंतरबैंक विदेशी मुद्रा बाजारों के ट्रेडिंग के घंटों को बढ़ा देने की सिफारिशों को पहले से ही लागू कर दिया गया है।

6.103 और ज्यादा उदारीकरण बैंकों पर ज्यादा उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से कार्य करने की मांग करता है ताकि निगमित संस्थाओं (कंपनियों) में ऐसा विश्वास बढ़े कि वे डेरिवेटिव्स लेनदेन कर सकें। कुछ अंतरराष्ट्रीय बैंकों के उदाहरणों का अनुसरण करते हुए जिसमें उनकी ओर से ढ़िलाई बरती जाने पर उन्हें क्षतिपूर्ति के दावों को झेलना पड़ता है, भारत में सभी बैंकों को ग्राहकों के लिए उपयुक्त और सटीक नीति की शुरुआत करने की जरूरत है। ''उपयुक्तता मानक'' यह सुनिश्चित करता है कि बैंक जटिल डेरिवेटिव लेनदेनों के संबंध में भी ऋण संबंधी निर्णय लेने में उन्हीं सिद्धांतों का उपयोग करें जिनका उपयोग वे गैर डेरिवेटिव लेनदेनों के लिए करते हैं।

6.104 डेरिवेटिव लेखांकन भारत में अभी भी निर्माण की स्थिति में है। बैंकों और कंपनियों की बहियों में (राजस्व की पहचान तथा आस्तियों और देयताओं के मूल्यन के संबंध में) तथा हेजिंग और ट्रेडिंग लेनदेनों के बीच और ज्यादा स्पष्टता लाने की जरूरत है। बेहतर कंपनी संचालन के संदर्भ में, बैंकों और कंपनियों की ओर से और ज्यादा प्रकटीकरण का मुद्दा महत्वपूर्ण हो गया है। मिश्रित सांचागत उत्पादों के मामले में बैंकों और कंपनियों की ओर से यह आवश्यक है कि वे पारदर्शी बनें और लिए गए जोखिमों की प्रवृत्ति और मात्रा का प्रकटीकरण करें तथा इन जोखिमों की निगरानी करने के लिए प्रणाली स्थापित करें।

6.105 भारी बकाया वायदा स्थितियों के कारण भारत में बैंक अपनी बहियों में जोखिमों का वहन करते हैं। सीसीआइएल का प्रस्ताव है कि अम.डालर रुपया वायदा लेनदेनों के निपटान की गारंटी व्यापार की तारीख से ही लागू कर दी जाए, इससे वायदा बाजार में गहनता तथा चलनिधि के काफी सीमा तक बढ़ने की आशा है और इससे जोखिमों में कमी आएगी। तारापोर समिति की सिफारिशों के अनुसार पूंजी खाते के और उदार कर देने से भविष्य में विदेशी मुद्रा बाजार में और नई चुनौतियों के आने की संभावना है।

चार्ट VI. 6 : वायदा प्रीमियम में घटबढ़

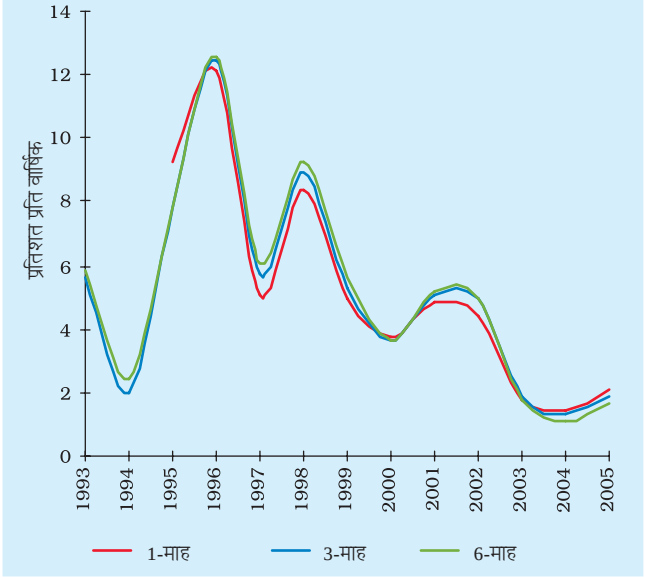

चार्ट VI.7: सांकेतिक प्रभावी विनिमय दर के मुकाबले भारतीय रुपए की घट-बढ़

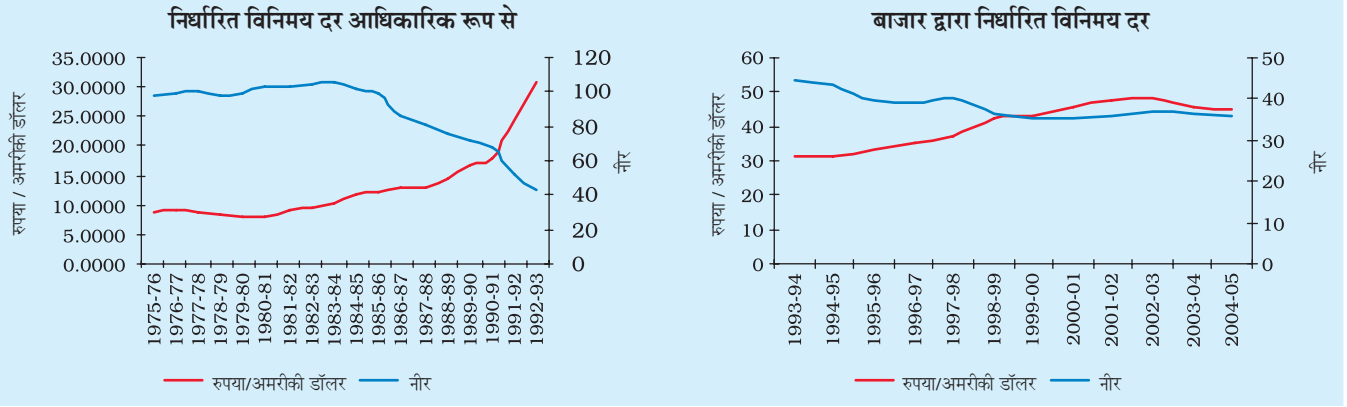

बाजार संबंधी गतिविधियां

6.106 विदेशी मुद्रा बाजार में मासिक कुल कारोबार 1.7 गुना बढ़कर जो जुलाई 1996 में 17 बिलि.अम. डालर का था, मई 2005 में 29 बिलि.अम. डालर का हो गया। हालांकि विदेशी मुद्रा बाजार में थोक लेनदेनों के लिए अंतरबैंक लेनदेनों के खाते में इसका अंश वर्षों के दौरान कम हुआ है (जो जुलाई 1997 के लगभग 87% से गिरकर मई 2005 में लगभग 72 प्रतिशत रह गया है (चार्ट VI.5)। साथ ही साथ वणिक लेनदेनों का अंश बढ़कर दोगुने से भी ज्यादा हो गया है (13.5 प्रतिशत से बढ़कर 27.8 प्रतिशत इसी अवधि में)। वायदा बाजार घटक (स्वैप तथा वायदा) में स्वैप की तुलना में वायदा बाजार अधिक तेजी से बढ़ा है।

6.107 विदेशी मुद्रा के संचयन को दर्शाते हुए, भारतीय अर्थव्यवस्थाओं में सुदृढ़ पूंजी आगम तथा विश्वास के कारण वायदा प्रीमियम जो 1995-96 में चोटी पर पहुंच गया था, तेजी से गिरकर नीचे आ गया (चार्ट VI.6)।

6.108 बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय रुपया व्यवस्थित रूप में चला है तथा विदेशी मुद्रा बाजार ने स्थिर स्थितियां दर्शाई हैं। ऐसा खास कर 1999-2000 के बाद हुआ

सारणी 6.6 : भारत में घरेलू वित्तीय बाजार का तुलनात्मक आकार
(रुपया मूल्यवर्गित)

(करोड़ रु.)

बाजार	औसत दैनिक कुल कारोबार	चालू बाजार मूल्यों पर अंकित सघउ	का. 1 की तुलना में का. 2 का प्रतिशत	एम$_3$	का. 2 की तुलना में का. 4 का प्रतिशत	बैंक जमा	का. 4 की तुलना में का. 6 का प्रतिशत	बैंक जमा	का. 1 की तुलना में का. 8 का प्रतिशत	केंद्र सरकार के आंतरिक ऋण	का. 1 की तुलना में का. 8 का प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
मुद्रा बाजार*											
1999-00	30,056	19,36,831	**1.6**	11,24,174	**2.7**	8,13,345	**3.7**	4,35,958	**6.9**	7,14,254	**4.2**
2000-01	40,923	20,89,500	**2.0**	13,13,220	**3.1**	9,62,618	**4.3**	5,11,434	**8.0**	8,03,698	**5.1**
2001-02	65,500	22,71,984	**2.9**	14,98,355	**4.4**	11,03,360	**5.9**	5,89,723	**11.1**	9,13,061	**7.2**
2002-03	76,722	24,63,324	**3.1**	17,17,960	**4.5**	12,80,853	**6.0**	7,29,215	**10.5**	10,20,689	**7.5**
2003-04	28,146	27,60,025	**1.0**	20,05,676	**1.4**	15,04,416	**1.9**	8,40,785	**3.3**	11,41,706	**2.5**
2004-05	31,830	31,05,512	**1.0**	22,53,938	**1.4**	17,00,198	**1.9**	11,00,428	**2.9**	12,70,272	**2.5**
सरकारी प्रतिभूति बाजार											
1999-00	–	19,36,831	**–**	11,24,174	**–**	8,13,345	**–**	4,35,958	**–**	7,14,254	**–**
2000-01	2,802	20,89,500	**0.1**	13,13,220	**0.2**	9,62,618	**0.3**	5,11,434	**0.5**	8,03,698	**0.3**
2001-02	6,252	22,71,984	**0.3**	14,98,355	**0.4**	11,03,360	**0.6**	5,89,723	**1.1**	9,13,061	**0.7**
2002-03	7,067	24,63,324	**0.3**	17,17,960	**0.4**	12,80,853	**0.6**	7,29,215	**1.0**	10,20,689	**0.7**
2003-04	8,445	27,60,025	**0.3**	20,05,676	**0.4**	15,04,416	**0.6**	8,40,785	**1.0**	11,41,706	**0.7**
2004-05	4,826	31,05,512	**0.2**	22,53,938	**0.2**	17,00,198	**0.3**	11,00,428	**0.4**	12,70,272	**0.4**
ईक्विटी बाजार											
1999-00	–	19,36,831	**–**	11,24,174	**–**	8,13,345	**–**	4,35,958	**–**	7,14,254	**–**
2000-01	9,308	20,89,500	**0.4**	13,13,220	**0.7**	9,62,618	**1.0**	5,11,434	**1.8**	8,03,698	**1.2**
2001-02	3,310	22,71,984	**0.1**	14,98,355	**0.2**	11,03,360	**0.3**	5,89,723	**0.6**	9,13,061	**0.4**
2002-03	3,711	24,63,324	**0.2**	17,17,960	**0.2**	12,80,853	**0.3**	7,29,215	**0.5**	10,20,689	**0.4**
2003-04	6,309	27,60,025	**0.2**	20,05,676	**0.3**	15,04,416	**0.4**	8,40,785	**0.8**	11,41,706	**0.6**
2004-05	6,566	31,05,512	**0.2**	22,53,938	**0.3**	17,00,198	**0.4**	11,00,428	**0.6**	12,70,272	**0.5**

*इसमें मांग मुद्रा, मीयादा मुद्रा और रेपो बाजार शामिल है।

स्रोत: भारतीय अर्थव्यवस्था के संबंध में सांख्यिकीय पुस्तिका, वार्षिक रिपोर्ट, भारिबैं विभिन्न अंक ।

सारणी 6.7: भारत में विदेशी मुद्रा बाज़ार तुलनात्मक आकार

(मिलियन अमरीकी डॉलर)

	विदेशी मुद्रा बाज़ार-मासिक औसत पण्यावर्त	विदेशी मुद्रा आस्तियां*	स्तंभ 3 की तुलना में स्तंभ 2 (प्रतिशत)	बाह्य ऋण*	स्तंभ 5 की तुलना में स्तंभ 2 (प्रतिशत)
1	2	3	4	5	6
1999-00	–	35,058	–	98,263	–
2000-01	1,19,521	39,554	302.2	1,01,326	118.0
2001-02	1,23,947	51,049	242.8	98,843	125.4
2002-03	1,32,072	71,890	183.7	1,04,958	125.8
2003-04	1,78,400	1,07,448	166.0	1,11,715	159.7
2004-05	2,41,010	1,35,571	177.8	1,23,310	195.5

* मार्च के अंत में।
स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका ।

चार्ट VI.8: मांग दर, गिल्ट आय तथा वायदा प्रीमियम

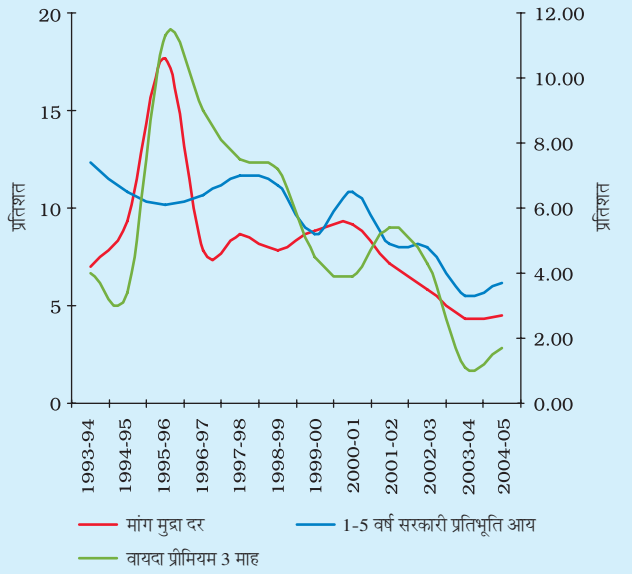

यदि उसकी तुलना उससे पहले की स्थिति से की जाए अर्थात् 1992 से पहले, जब रुपए की विनिमय दर रिज़र्व बैंक द्वारा आधिकारिक रूप से निर्धारित की जाती थी। (चार्ट VI.7)।

वित्तीय बाजारों का तुलनात्मक आकार तथा समेकन

6.109 वित्तीय बाजारों के सभी तीनों घटकों ने ऊपर की गई चर्चानुसार बाजारों को गहन तथा व्यापक बनाने के लिए 1990 के बाद के वर्षों से किए गए विभिन्न उपायों के फलस्वरूप परिमाण (मात्रा), सहभागियों की संख्या तथा तरलता की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रगति देखी गई। मुद्रा बाजार भारत में रुपया मूल्यवर्धित वित्तीय बाजार का सबसे महत्वपूर्ण घटक बनकर उभरा है जिसने सरकारी प्रतिभूति बाजार और ईक्विटी बाजार ने किए गए लेनदेनों को भी पार कर लिया है। इसका अंश 1990-2000 में सघउ के लगभग 1.6 प्रतिशत से दुगुना होकर 2002-03 में सघेउ के 3.1 प्रतिशत पर पहुंच गया, परंतु उसके बाद इसमें तेजी से गिरावट आई जिसका कारण अन्य बातों के साथ-साथ, मांग मुद्रा बाजार के कुल कारोबार में गिरावट का आना था (सारणी 6.6) ।

6.110 कुल कारोबार में यह तेज गिरावट मुख्यतः पूर्णतः अंतर बैंक मांग मुद्रा बाज़ार की ओर बढ़ने के कारण थी। तथापि, सरकारी प्रतिभूति बाजार का अंश 2000-01 से 2002-03 के बीच सघउ के लगभग 0.1 प्रतिशत से 0.3 प्रतिशत तक बढ़ा, जबकि 2004-05 में बढ़ती हुई ब्याज दरों के कारण, जिसने कारोबार की गतिविधि को प्रभावित किया; यह गिर गया। सघउ के प्रति ईक्विटी बाजार का अंश 2000-01 और 2004-05 के बीच आधे से अधिक रहा। विदेशी मुद्रा बाजार का तुलनात्मक आकार भी उल्लेखनीय रूप से बढ़ा था (सारणी 6.7)।

6.111 भारत में वित्तीय बाजार के विकास का प्रमुख उद्देश्य वित्तीय बाजारों में समेकन की प्रक्रिया को तेज करना रहा है जो प्रतिस्पर्धी बाजारों के निर्माण के अलावा मौद्रिक नीति के बाजार आधारित लिखतों का प्रयोग करने में सहायता करनी है। घरेलू वित्तीय बाजार के विभिन्न घटकों के तुलनात्मक अंश यह दर्शाते हैं कि मुद्रा बाजार बाजार का बहुत बड़ा घटक है। इसके बाद ईक्विटी बाजार और इसके बाद गिल्ट बाजार का स्थान आता है (सारणी 6.8)।

सारणी 6.8 : भारतीय घरेलू (रुपए मूल्यांकित) वित्तीय बाज़ार एक नज़र में

	मुद्रा बाज़ार-औसत दैनिक पण्यावर्त* (करोड़ रुपए)	सरकारी प्रतिभूति बाज़ार-औसत दैनिक पण्यावर्त (करोड़ रुपए)	ईक्विटी बाजार-औसत दैनिक पण्यावर्त		कुल जोड़ (2+3+4+5)	कुल में प्रतिशत अंश		
			बीएसई (करोड़ रुपए)	एनएसई (करोड़ रुपए)		मुद्रा बाजार	सरकारी प्रतिभूति बाजार	ईक्विटी (बीएसइ + एनएसइ)
1	2	3	4	5	6	7	8	9
2000-01	40,923	2,802	3,981	5,327	53,034	77.2	5.3	17.6
2001-02	65,500	6,252	1,229	2,081	75,061	87.3	8.3	4.4
2002-03	76,722	7,067	1,250	2,461	87,500	87.7	8.1	4.2
2003-04	28,146	8,445	1,980	4,329	42,900	65.6	19.7	14.7
2004-05	31,830	4,826	2,053	4,513	43,222	73.6	11.2	15.2

*: मांग मुद्रा, मीयादी मुद्रा तथा रेपो बाज़ार शामिल है।
स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, वार्षिक रिपोर्ट, भा.रि.बैंक, विभिन्न प्रकाशन।

बाजार समेकन

6.112 रिज़र्व बैंक की नीतियों का मुख्य जोर गहन, तरल और समन्वित वित्तीय बाजारों के विकास पर रहा है। तदनुसार सुधार की प्रक्रिया ने वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों के बीच परस्पर समेकन में सहायता की है। बाजारों के बीच संपर्क की सरणियां अलग अलग रही हैं। उदाहरण के लिए मांग मुद्रा बाजार और विदेशी मुद्रा बाजार के बीच समेकन का परिचालन अनिवार्यतः विदेशी बाजारों में बैंकों की अनुमति निवेश की सीमाओं तथा बैंकों के अपने खाते या कंपनियों के खातों में एफसीएनआर(बी) के अंतर्गत विदेशी मुद्रा में तेज (सुरक्षा कवर) समय-पूर्व भुगतान आदि के विकल्प के माध्यम से होती है। इन संपर्क सरणियों के व्यापक और गहन होने की आशा है अतः उनका लाभ उठाया जाना चाहिए। दूसरा उदाहरण मांग मुद्रा बाजार और सरकारी प्रतिभूति बाजार के बीच संपर्क सरणी से संबंधित है जहां सरकारी प्रतिभूतियों में भारी निवेशों का निधियन अल्पावधिक उधार राशियों से, विशेषकर मांग मुद्रा बाजार से किया जाता है। वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटक बेहतर रूप से समेकित हो गए हैं विशेषकर 1990 के बाद के दशक के मध्य से (चार्ट VI.8)।

6.113 जैसे-जैसे वित्तीय बाजारों में सुधार आगे बढ़े, बाजार के विभिन्न घटकों तथा देशी और अंतरराष्ट्रीय बाजारों के बीच संपर्क बढ़ा। अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से भी देशी और वैश्विक बाजारों में समन्वय का गहन और तेजी से बढ़ाने के लिए दबाव बढ़ता जाएगा। भारतीय वित्तीय बाजार का अंतरराष्ट्रीय बाजारों के साथ समन्वय के संदर्भ में पूंजी खाते की परिवर्तनीयता जिसका विदेशी मुद्रा बाजार पर महत्वपूर्ण प्रभाव है, की ओर बढ़ने का अत्यधिक महत्त्व है। पूंजी खाते की परिवर्तनीयता संबंधी (सीएसी) रिपोर्ट में जैसा कि उल्लेख किया गया है, पूंजी खाते की परिवर्तनीयता की पूर्व शर्तें/संकेतक जसे राजकोषीय समेकन, पूर्व निर्धारित मुद्रास्फीति की दर की प्राप्ति, वित्तीय क्षेत्र का समेकन, विदेशी मुद्रा भंडार की पर्याप्तता, भुगतान संतुलन की सुदृढ़ स्थिति, आदि को उचित रूप से पूरा करना है, इससे पहले कि रुपए को पूंजी खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय बनाया जाए। अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ वास्तविक तथा वित्तीय क्षेत्रों दोनों के बढ़ते हुए समन्वय के साथ बाह्य आवेगों के प्रभाव को और तेजी से महसूस किया जाएगा जो इसे अनिवार्य बना देती हैं कि इन पूर्व-शर्तों को पूंजी खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता लाने से पहले सुस्थापित किया जाए।

6.114 मुद्रा, सरकारी प्रतिभूतियां और विदेशी मुद्रा बाजारों के बीच बढ़ते हुए संपर्कों ने कभी-कभी रिज़र्व बैंक द्वारा विदेशी मुद्रा बाजारों में अत्यधिक उद्वेगशीलता को रोकने के लिए मांग और आपूर्ति के बीच आय अंतरालों को पूरा करते हुए अल्पावधिक मौद्रिक उपायों का उपयोग करने की आवश्यकता आ जाती है। हाल के वर्षों में भारतीय वित्तीय बाजारों ने वैश्विक वित्तीय बाजारों के अनुरूप बढ़ाने की प्रवृत्ति दर्शाई है जो एक ओर देशी और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बढ़ते हुए समेकन का संकेत करती हैं, वहीं दूसरी ओर चालू वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों के बीच समन्वय को भी जो वित्तीय क्षेत्र के सुधारों और सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा प्रेरित बढ़ते हुए वैश्वीकरण के कारण हुआ है। दूरगामी वित्तीय क्षेत्र के सुधारों ने भारत को एक खुली अर्थव्यवस्था के ढांच की ओर बढ़ने को सुविधाजनक बनाया है जिसमें विदेशी मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और मुद्रा बाजार के बीच परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया काफी महत्वपूर्ण हो गई है। अर्थव्यवस्था को खोलने से विदेशी निवेशों के आगमों की दृष्टि से लाभ प्राप्त हुए हैं, जिसने वृद्धि और रोजगार में योगदान किया है। तथापि, इन लाभों ने भारी और उद्वेगशील पूंजी प्रवाहों के बीच व्यापक अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन के लिए नई चुनौतियां भी खड़ी कीं (मोहन 2004)। इसके मौद्रिक प्रबंधन के लिए निहितार्थ थे। भारत ने इस चुनौती का सामना उपयुक्त मौद्रिक राजकोषीय समन्वय के माध्यम से किया। चलनिधि समायोजन सुविधा योजना में उपयुक्त परिवर्तन किए गए। व्यवस्था में चल रही अतिरिक्त चलनिधि के काफी बड़े अंश से निपटने के लिए एमएसएच शुरू की गयी। बाजार समन्वय

सारणी 6.9 प्रमुख वित्तीय बाजार की दरों में सह संबंध गुणांक

अवधि	मुद्रा बाजार				फोरेक्स बाजार - वायदा प्रीमियम						प्रतिभूति बाजार - गिल्ट आय$					
	मांग मुद्रा दर		रेपो दर		1-माह		3-माह		6-माह		अल्पा-वधिक		मध्या-वधिक		दीर्घा-वधिक	
	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.	मा.वि	पर.सह.
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17
1970 के बाद का दशक	2.68	32.22									0.53	10.66	0.52	9.76	0.54	9.08
1980 के बाद का दशक	1.16	12.25									3.48	40.62	1.63	19.75	1.47	16.14
1991-92 से 1995-96	5.35	39.31	2.12^	27.24^			4.41*	70.57*	3.93*	62.82*	3.29	24.52	1.21	10.23	1.05	8.78
1996-97 से 2004-05	1.82	25.50	1.69	27.96	2.19	48.08	2.62	53.05	2.90	56.50	2.20	24.43	1.90	21.58	2.23	23.07

$: उन्मोचनगत आय
* : इसमें 1993-94 से 1995-96 की अवधि भी शामिल है।
^ : 1992-93 से 1995-96 की अवधि भी शामिल है।
अल्पावधि: 1-5 वर्ष: मध्यावधि: 5-15 वर्ष: दीर्घावधि: 15 वर्ष और उससे अधिक
मा.वि.: मानक विचलन पर.सह.: परिवर्ती सहगुणांक
स्रोत : भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी पुस्तिका भारिबैं.

चार्ट VI.9: मांग दरों के लिए चलनिधि समायोजन सुविधा से पूर्व और बाद में अनौपचारिक मार्जिन

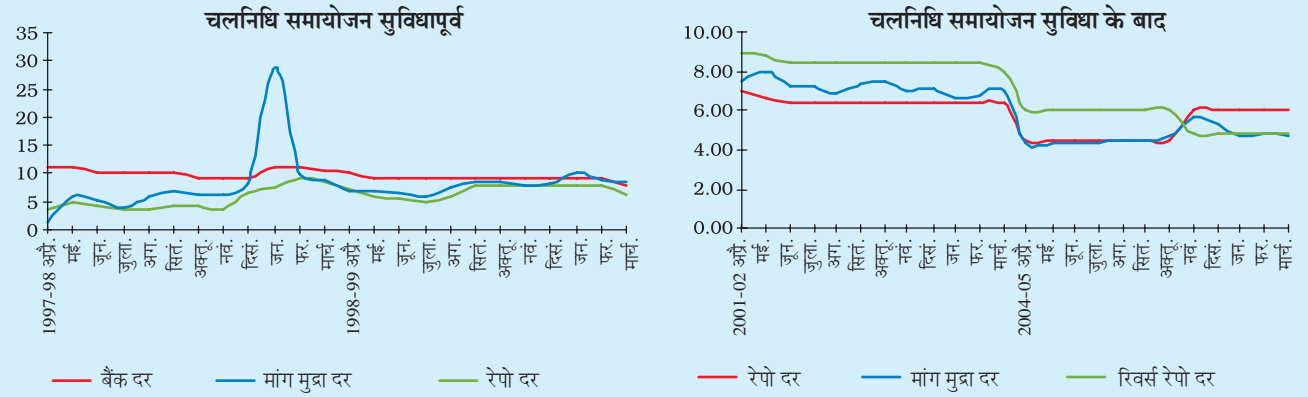

के संदर्भ में, रिज़र्व बैंक बड़ी तत्परता से वैश्विक गतिविधियों पर नजर रखता है, जिसका भारतीय अर्थव्यवस्था और वित्तीय बाजारों पर प्रभाव पड़ेगा और त्वरित उपचारात्मक उपाय करता है। उदाहरण के लिए पूर्व एशियाई संकट और उसके बाद 11 सितंबर 2001 के संकट के बाद विभिन्न वित्तीय बाजारों में रिज़र्व बैंक की कार्रवाई तथा इसकी प्रभावोत्पादकता को विश्व भर में स्वीकार किया गया है (जालान 2000)।

उद्वेगशीलता

6.115 ऐसा लगता है कि वर्षों से वित्तीय बाजार के समन्वय ने उद्वेगशीलता को कम किया है। मांग मुद्रा बाजार में उद्वेगशीलता (मानक विचलन तथा परिवर्ती सहगुणांक द्वारा मापे गए अनुसार) की तुलना यदि पहले 1970 के बाद के दशक और 1990 के बाद के दशक की उद्वेगशीलता से की जाए तो 1996-97 से 2004-05 की अवधि की उद्वेगशीलता कम हुई है (सारणी 6.9)। अप्रैल 1997 में बैंक दर को सक्रिय करने के पश्चात एक अनौपचारिक मार्जिन बैंक दर (उच्चतम सीमा) और रेपो दर (निम्नतम) द्वारा बनाया गया । तथापि, 2000 में चलनिधि समायोजन सुविधा के शुरू किए जाने के बाद अनौपचारिक मार्जिन रेपो तथा रिवर्स रेपो द्वारा बनाया गया (चार्ट VI 9) । विदेशी मुद्रा बाजार ने भी 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों की तुलना में 1990 के बाद के दशक के मध्य के वर्षों में कम उद्वेगशीलता देखी। जो बाजार में गहनता में वृद्धि के कारण हो सकती है। तथापि, सरकारी प्रतिभूति बाजार में यह प्रवृत्ति इसके बिल्कुल विपरीत रही जिसमें उद्वेगशीलता 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों की तुलना में इसी दशक के मध्य के वर्षों में बढ़ी है जो अन्य बातों के साथ-साथ द्वितीय बाजार में बढ़ी हुई गतिविधियों के कारण हो सकती है।

6.116 वित्तीय बाजार के समन्वय का प्रमुख लक्ष्य वित्तीय बाजारों के सभी विभिन्न घटकों में दरों के संघ की शक्ति (अर्थात् परस्पर सह संबंध) द्वारा उपलब्ध कराई गई (सारणी 6.10) । 1996-97 से 2004-05 की अवधि के दौरान मांग और श्रेष्ठ प्रतिभूति (गिल्ट) बाजारों के बीच संपर्क 1990 के बाद के दशक (1993-94 - 1995-96) के प्रारंभिक वर्षों की तुलना में अधिक मजबूत दिखाई दिए जो बेहतर समन्वय को दर्शाते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि मांग और विदेशी मुद्रा बाजारों (वायदा प्रीतियम) के बीच यह संपर्क, 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों की तुलना में इसी दशक के मध्यवर्ती वर्षों में कमजोर हुआ है जिसका कारण शायद पूर्व एशियाई संकट के परिप्रेक्ष्य में बाह्य क्षेत्र में उस समय विद्यमान उद्वेगशीलता को देशी बाजारों में फैलने से रोकने के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा किए गए विभिन्न उपाय थे।

सारणी 6.10: प्रमुख वित्तीय बाजार की दरों में सह संबंध गुणांक

अवधि	मांग दर तथा वायदा प्रीमियम			मांग एवं रेपो दर	मांग दर तथा गिल्ट आय			वायदा प्रीमियम तथा गिल्ट आय		
	1-माह	3-माह	6-माह		अल्पावधि	मध्यावधि	दीर्घावधि	1-माह	3-माह	6-माह
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1970s					0.75	0.69	0.66			
1980s					0.63	0.82	0.87			
1991-92 to 1995-96		0.96 *	0.96 *	0.88 **	0.43	-0.80	-0.65		-0.98*	-0.65 *
1996-97 to 2004-05	0.73	0.67	0.65	0.59	0.87	0.97	0.94	0.87	0.72	0.78

* 1993-94 से 1995-96.तक की अवधि शामिल है।
** 1992-93 से 1995-96.तक की अवधि शामिल है।
स्रोत: भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकीय पुस्तिका, भा.रि.बैंक।

6.117 समयावधियों में अंतरों के बावजूद, वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों में तथा मुद्रा बाजार में भी बढ़े हुए समन्वय को दर्शाने वाले बेहतर सह संबंध गुणांक पूर्ववर्ती अनुभवजन्य अध्ययनों के अनुरूप हैं (रिज़र्व बैंक 2000-01 तथा 2003-04)।

बाजार का विकास - द्विविधाएं तथा चुनौतियां

6.118 अधिकांश केंद्रीय बैंकों की तरह वित्तीय बाजारों के सुधारों के संदर्भ में रिज़र्व बैंक को भिन्न-भिन्न मुद्दों से संतुष्ट होना पड़ा जिनमें से कुछ परस्पर विरोधी थे जैसे -

(i) भारतीय वित्तीय बाजार में विविध विनियामकों का होना, जिसमें रिज़र्व बैंक मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजार को विनियमित करता है, सेबी पूंजी बाजार को विनियमित करता है और इर्डा बीमा क्षेत्र को) इसने बाजार सुधार की प्रक्रिया को सुचारू बनाने के लिए रिज़र्व बैंक तथा अन्य विनियामकों के बीच कनिष्ठ सहयोग को आवश्यक बना दिया हैं। (क्योंकि बैंक तथा वित्तीय संस्थाएं अनेक बाजारों में प्रमुख खिलाड़ी हैं)।

(ii) सरकारी प्रतिभूति बाजार में रिज़र्व बैंक को दोहरी भूमिकाएं निभानी पड़ती हैं अर्थात् एक विनियामक की तथा एक ऋण प्रबंधक की (ऋण प्रबंधक की भूमिका उसे रिज़र्व बैंक अधिनियम से प्राप्त हुई है)। उच्च राजकोषीय घाटों के प्रतिकूल प्रभाव को सीमित रखते हुए साथ ही मौद्रिक नीति के बल को कम होने दिए बिना नीति के संचालन ने रिजर्व बैंक के समक्ष गत अवधि में कई अवसरों पर वास्तविक चुनौती खड़ी कर दी है।

(iii) भारी पूंजी आगमों को देखते हुए विदेशी मुद्रा विनिमय दर का प्रबंधन रिज़र्व बैंक के समक्ष प्रमुख द्विविधा बनकर उभरा है, जो मौद्रिक तथा बाह्य क्षेत्र के प्रबंधन में घनिष्ठ समन्वय की मांग करता है। अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए वैश्वीकरण के चलते मौद्रिक नीति के संचालन में विनिमय दर एक बहुत महत्वपूर्ण कारक बनकर उभरा है। इसके अलावा, यह मान लिया गया है कि विनिमय दरों के संबंध में जो आर्थिक कारकों की बाध्यताओं द्वारा अपेक्षित भारांकों की तुलना में लोकप्रिय अवधारणाओं को दिए गए अतिरिक्त भारांक निश्चित रूप से मौद्रिक प्रबंधन को जटिल बना देंगे। विदेशी मुद्रा की स्थिति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों के संबंध में जनता में जागरूकता जगाना रिज़र्व बैंक के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। दूसरे केंद्रीय बैंकों की तरह रिज़र्व बैंक को झेलने पड़ रहे विदेशी मुद्रा प्रबंधन के संबंध में अन्य मुद्दे हैं - (क) विनिमय दर व्यवस्था की उपयुक्तता, (विशेषकर तथा कथित ''असंभव ट्रिनिटीटट की परिकल्पना के संबंध में) जो यह मानता है कि पूंजी खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता, मौद्रिक आजादी (मुद्रा स्फीति के नियंत्रण के लिए) तथा एक स्थिर करेंसी संभव नहीं हैं, (ख) किस दर की निगरानी की जाए (अंकित या वास्तविक तथा (ग) विदेशी मुद्रा विनिमय बाजारों में स्थिरता बनाम उद्वेगशीलता (जालान 2001) ।

(iv) सुव्यवस्थित और दक्ष वित्तीय बाजारों ने बाजार सहभागियों के साथ लगातार संपर्क बनाए रखने को आवश्यक बना दिया जिसमें 'गोपनीयता' पर कोई समझौता न किया गया हो ताकि परामर्शी प्रक्रिया-तंत्र के माध्यम से बाजारों के विनियामक पहलुओं में बदलाव लाए जा सके ।

(v) वैश्वीकरण और उदारीकरण के संदर्भ में पारदर्शिता तथा आंकड़ा प्रसारण में अल्पाधिकारवादी प्रवृत्तियों को रोकना तथा प्रतिस्पर्धी बाजारों के विकास को सुविधाजनक बनाना जरूरी है। रिज़र्व बैंक वित्तीय बाजारों के विभिन्न पहलुओं और इसके परिचालनों पर आंकड़ों का प्रसारण करता रहा है। इस संदर्भ में बिना मौद्रिक नीति तथा वित्तीय स्थिरता के साथ समझौता किए बाजार को कितना उजागर करना है, यह एक चुनौती के रूप में उभरी है।

(vi) रिज़र्व बैंक के अंदर भी एक प्रमुख चुनौती है , अपने कार्मिकों की दक्षता /कौशलों को सुधारने के लिए व्यवस्थाएं करने की ताकि वे बाजार सहभागियों को गति और कौशलों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें।

(vii) बैंकों के विनियामक और पर्यवेक्षक के रूप में रिज़र्व बैंक की भूमिका में भी कुछ टकराव है। उदाहरण के लिए पर्यवेक्षक की दृष्टि से आस्ति देयता प्रबंध के मार्गदर्शी सिद्धान्तों को पूरा करने के लिए अल्पावधिक प्रतिभूतियां जारी करना अधिक अनुकूल है, जबकि ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक मीयाद प्रोफाइल के साथ दीर्घकालीन प्रतिभूतियों के साथ मीयाद के प्रोफाइल का मिलान करने का वरीयता देता है।

II. उदारीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में वित्तीय बाजारों में रिज़र्व बैंक की बदलती भूमिका

6.119 पिछली शताब्दी के दौरान एक महत्वपूर्ण घटना विश्व भर में केंद्रीय बैंकों की भूमिका का तेजी से हुआ विकास है। यह कई कारणों से हुआ जैसे देशी अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय प्रणाली का उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा प्रौद्योगिकी उन्नयन। जहां अधिकांश पिछली शताब्दी के दौरान केंद्रीय बैंकों ने अपने निर्णय ज्यादातर घरेलू संदर्भ में लिए। इस स्थिति में कई देशों के संदर्भ में 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों से उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है (ग्रीनसन, 1997)। उद्वेगशील पूंजी प्रवाहों तथा संकटों की शृंखला के संदर्भ में अनेक देशों में केंद्रीय बैंकों को अपनी भूमिका के बारे में, विशेषकर वित्तीय बाजार सुदृढ़ घरेलू वित्तीय बाजारों को विकसित करने में पर्याप्त प्रयास करने और संसाधनों का विस्तार करने के लिए सोचने को मजबूर कर दिया।

6.120 भारत जैसे देशों के अनुभवों ने यह दर्शाया है कि योजना आधारित और विनियमित संरचना से बाजार आधारित प्रणाली की ओर बढ़ने से केंद्रीय बैंकों की भूमिका में भी भारी परिवर्तन हुए हैं। हालांकि केंद्रीय बैंक की विनियामक और विकासात्मक भूमिकाएं अभी भी बनी हुई हैं, लेकिन ऐसी भूमिकाओं का स्वरूप बदल चुका है। वित्तीय बाजारों के विनियामक के रूप में, केंद्रीय बैंक की प्रमुख चिंता मौद्रिक स्थिरता तथा बाजारों में व्यवस्थित स्थितियां बनाए रखने की है। इस उद्देश्य के लिए यह उपयुक्त प्रणालियां, प्रक्रियाएं, मानकें और संहिताएं, जोखिम प्रबंध प्रणालियां, तथा लेखांकन मानदंड जो वैश्विक मानदंडों के समक क्ष हों, स्थापित करके एक सुव्यवस्थित बाजार के विकास के लिए एक अनुकूल विनियामक परिवेश बनाने का प्रयास करता है। इसी प्रकार बाजारों में केंद्रीय बैंक की विकासात्मक भूमिका में, (नई संस्थाओं लिखतों की रचना तथा आधुनिक भुगतान और निपटान प्रणालियों के माध्यम से आवश्यक बुनियादी संरचना तथा प्रौद्योगिकीय समर्थन प्रदान करके) बाजार के विकास की बाधाओं को हटाना शामिल है। देशी वित्तीय बाजारों का वैश्विक बाजारों के साथ समन्वय केंद्रीय बैंकों तथा संकटों और संक्रामक प्रभावों को रोकने के लिए सभी विश्व बाजारों में बेहतर पारदर्शिता तथा मानकों में एकरूपता लाने के लिए अंतरराष्ट्रीय मानक स्थापित करने वाली एजेंसियों के बीच घनिष्ट समन्वय की मांग करता है। वैश्वीकरण के साथ-साथ अर्थव्यवस्था और वित्तीय बाजारों की संरचना में परिवर्तनों ने भारत सहित कई देशों में मौद्रिक नीति संबंधी ढांचे तथा परिचालन प्रक्रियाओं में परिवर्तनों को आवश्यक बना दिया है। वैश्वीकरण और उदारीकरण ने केंद्रीय बैंकों के परिचालनों में विविध द्विविधाएं भी खड़ी कर दी हैं।

6.121 सभी केंद्रीय बैंक बुनियादी तौर पर अपनी अपनी अर्थव्यवस्थाओं में ऋण के प्रवाह के बारे में चिंतित होते हैं, चाहे यह ऋण बैंकों, गैर बैंकों, वित्तीय संस्थाओं से या संस्थागत निवेशकों से प्रवाहित होता है। नए वित्तीय परिदृश्य में संस्थागत निवेशक तथा अन्य गैर बैंक वित्तीय संस्थाएं पहले से कहीं ज्यादा आस्तियों के अंश और ऋण जोखिम रखते हैं । वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति का एक बड़ा भाग प्रतिभूति बाजारों द्वारा की जाती है, जो बहुत कुछ अपनी परंपरागत उत्तरदायित्वों को संभाले हुए हैं (मैकडोनो, 1998) । तदनुसार, वैश्विक निश्चित आय और ऋण बाजारों के संबंध में केंद्रीय बैंकों के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हैं - (i) अपने स्वयं के कार्यों में पारदर्शिता बढ़ाते हुए मूल्य की खोज की प्रक्रिया को बढ़ाना ; (ii) चलनिधि प्रदाता के रूप में बैंक सुदृढ़ ऋण संबंधी निर्णय लेकर लेनदेन की प्रक्रिया को समर्थन देने में अपनी भूमिका उचित रूपसे निभाएं, यह सुनिश्चित करना।

6.122 वैश्वीकरण और वित्तीय बाजारों के समन्वय ने मौद्रिक, वित्तीय तथा बाह्य क्षेत्र के प्रबंधन में केंद्रीय बैंकों के लिए नई नई चुनौतियां और द्विविधाएं प्रस्तुत कर दी हैं। भारतीय वित्तीय बाजार के वैश्विक बाजारों के साथ समन्वय के संदर्भ में रिज़र्व बैंक की विनियामक और पर्यवेक्षी भूमिका वित्तीय स्थिरता बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हो गई है। तदनुसार रिज़र्व बैंक ने अपनी मौद्रिक नीति के परिचालन संबंधी प्रक्रियाओं में सुधार किया। साथ ही अपनी विनियामक प्रणाली तंत्र में भी, ताकि वैश्विक मानकों के समकक्ष बन सकें। वित्तीय संस्थाओं, बाजारों और वित्तीय संरचना के विभिन्न पहलू जैसे जोखिम प्रबंध प्रणालियां, आय की पहचान, और प्रावधानीकरण संबंधी मानदंड, प्रकटीकरण संबंधी मानदंड और लेखांकन मानक अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के अनुरूप बनाने शुरू किए गए हैं।

मौद्रिक नीति की संप्रेषण प्रक्रियातंत्र का विकास

6.123 भारत में मौद्रिक नीति घरेलू और वैश्विक व्यापक आर्थिक दशाओं, दोनों, में होनेवाले परिवर्तनों के अनुरूप निरंतर प्रतिक्रियाएं करती रही है और तदनुसार परिचालनात्मक प्रक्रियाओं में भारी परिवर्तन हुए हैं। जहां 1990 के बाद के दशक के मध्य से पूर्व मुद्रा को परिचालनात्मक लक्ष्य और बैंकों के रिजर्व को परिचालनात्मक साधन माना जाता था, वहीं अपविनियमन के साथ साथ ब्याज दरों और विनिमय दरों में इन दोनों के निर्धारण में बाजारी शक्तियों की भूमिका में वृद्धि हुई । तथापि, यह ढांचा भी अधिकाधिक दबाव में आता चला गया - बढ़ते हुए पूंजी आगम के कारण बढ़ती हुई चलनिधि द्वारा मुद्रा आपूर्ति पर बढ़ते हुए ऊर्ध्वमुखी दबाव को निष्प्रभावी करना पड़ा (मोहन, 2004)। गुणत्मक परिवर्तियों की तुलना में ब्याज दरों और विनिमय दरों द्वारा प्राप्त की गयी महत्ता के कारण मौद्रिक नीति की संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र में विद्यमान बढ़ते हुए परिवर्तनों के साक्ष्यो के संदर्भ में मूल्य निर्धारण संबंधी निर्णय अधिकांशतः बाजार शक्तियों पर छोड़ दिए गए। भारत में मौद्रिक नीति का कायाकल्प 1990 के बाद के दशक के अंतिम वर्षों में हुआ। मौद्रिक और वित्तीय क्षेत्र के सुधारों ने रिज़र्व बैंक को अपने अधिकार में विद्यमान विभिन्न लिखतों का विस्तार करने में समर्थ बनाया । आरक्षित अपेक्षाओं पर निर्भरता, विशेषकर, नकदी आरक्षित अनुपात पर निर्भरता को मौद्रिक नियंत्रण के एक लिखत के रूप में कम कर दिया गया। सीआरआर को 1994-95 के 15.0 प्रतिशत से घटाकर वर्तमान में 5.0 प्रतिशत पर ले आया गया है। सांविधिक चलनिधि अनुपात को 1992 के 38.5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत के सांविधिक रूप से निम्नतम स्तर पर ले आया गया है। इसके फलस्वरूप रिजर्व बैंक ने 1998-99 से एक अधिक व्यापक आधार वाले विविध संकेतक दृष्टिकोण को अपनाया। जिसके द्वारा ब्याज दरें या विभिन्न बाजारों (जैसे मुद्रा, पूंजी तक सरकारी प्रतिभूति बाजारों में प्रतिलाभ की दरें तथा करेंसी, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण विस्तार, राजकोषीय स्थिति, व्यापार, पूंजी आगम, मुद्रास्फीति की दर, विनिमय दर, पुनर्वित्त तथा विदेशी मुद्रा में लेनदेनों के संबंध में आंकड़े जो

उच्च फ्रीक्वेंसी के आधार पर उपलब्ध हों, नीति संबंधी निर्णय लेने के लिए उत्पादन आंकड़ों के साथ-साथ उपलब्ध कराए जाते हैं। यह परिवर्तन धीरे-धीरे आया और 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों से सुधार की अवधि के दौरान किए गए उपायों का तर्कसम्मत परिणाम था (रेड्डी 2002) ।

6.124 एक अपविनियमित वित्तीय परिवेश में, जिसमें पर्याप्त सीमा तक खुले पूंजी खाते हों, मौद्रिक नीति को अल्पावधिक आधार पर अप्रत्याशित परिवर्तनों के प्रति भी प्रतिक्रिया करनी पड़ती है। एक बहुविधि संकेतक प्रणाली को अपनाने से इसने रिज़र्व बैंक का घरेलू और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक तथा बाजार की स्थितियों के अनुसार प्रभावी रूप से परिवर्तन करने की आवश्यक नमनीयता प्रदान की।

6.125 कुछ महत्वपूर्ण कारक जिन्होंने भारत में 1990 के बाद के दशक के दौरान मौद्रिक नीति के ढांचे तथा परिचालनगत प्रक्रियाओं को रूपाकार प्रदान किया वे थे - बजट घाटे का रिज़र्व बैंक द्वारा स्वतः मौद्रीकरण से अलग करना, बढ़ते हुए पूंजी आगम तथा वित्तीय बाजारों के सुधार। भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए वैश्वीकरण और उदारीकरण के साथ-साथ मौद्रिक नीति ने उल्लेखनीय परिवर्तन देखें। जहां 1990 के बाद के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक भारत में मौद्रिक नीति ने ऋण के प्रवाह की लागत, भाग तथा दिशा को नियंत्रित करने का प्रयास किया, वहीं 1990 के बाद के दशक में शुरू की गई विभिन्न नीतियों, गतिविधियों और वित्तीय बाजारों के समन्वय ने केंद्रीय बैंक के मूल्य संकेतकों की भूमिका को बढ़ा दिया और इसके द्वारा इससे पूर्व के मात्रात्मक परिवर्तियों के स्थान पर ब्याज दरों को भारत में मौद्रिक नीति के संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परिवर्ती के रूप में बना दिया (मोहन 2004)। इसके अलावा, क्रमिक रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलते चले जाने से मौद्रिक नीति, विदेशी मुद्रा विनियमन दर नीति, तथा राजकोषीय नीति को उत्तरोत्तर रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए समन्वित करना पड़ा कि ये नीतियां एक दूसरे के विरोधी प्रयोजनों के लिए काम न करें। (तारापोर 2000)।

6.126 इस संदर्भ में, रिज़र्व बैंक का प्रयास नीति के अप्रत्यक्ष लिखतों की ओर बढ़ने के लिए आधार तैयार करने की दृष्टि से वित्तीय बाजारों को विकसित करने का रहा है। प्रथम चरण के रूप में, सरकारी प्रतिभूतियों पर आयों को बाजार से संबद्ध कर दिया गया। साथ ही साथ रिज़र्व बैंक ने अन्य बाजारों से संबंधित अनेक वित्तीय उत्पाद तैयार करने में सहायता की। अगले चरण में, ब्याज दर संरचना को समानान्तर रूप से तर्कसम्मत बनाया गया तथा बैंकों को यह छूट दी गई कि अपनी प्रमुख ब्याज दरों का निर्धारण स्वयं करें । इसने चलनिधि प्रबंधन के लिए तथा विदेशी मुद्रा बाजार में अल्पावधिक उद्वेगशीलता को रोकने के लिए खुले बाजार के परिचालनों के एक प्रभावी उपाय के रूप में प्रयोग करने को सुविधाजनक बनाया। इस अवधि के दौरान शुरू किया गया, एक अन्य महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय परिवर्तन था बैंक दर को पुनः सक्रिय बनाना, प्रारंभ में इसे रिज़र्व बैंक की पुनर्वित्त की दर सहित अन्य सभी दरों से जोड़ दिया गया (अप्रैल 1997)। बाद में निश्चित रेपो दर (दिसंबर 1997) शुरू करना। जिसने मुद्रा बाजार में एक अनौपचारिक मार्जिन निर्माण करने में सहायता की । इसमें रेपो दर का न्यूनतम स्तर था और बैंक दर का उच्चतम स्तर। खुले बाजार के परिचालनों के साथ-साथ इन दोनों लिखतों के प्रयोग ने रिज़र्व बैंक को अधिकांश समय मांग दर को अनौपचारिक मार्जिन के अंदर बनाए रखने में समर्थ बनाया। बाद में, जून 2000 से चलनिधि समायोजन सुविधा की शुरुआत ने चलनिधि की स्थिति को दैनिक आधार पर और साथ ही बैंक दर में परिवर्तनों के माध्यम से नीति संबंधी बल का संकेत देते हुए चलनिधि समायोजन सुविधा के जरिए अल्पावधिक ब्याज दरों को भी संतुलित करने में मदद की। मौद्रिक नीति का जोर विशेषकर 1990 के बाद के दशक के मध्य से नीतिगत लिखतों का और अधिक लचीले और दुतरफा रूप से प्रयोग करने पर रहा है, हालांकि रात्रिभर के लिए ब्याज दरों को लक्ष्यबद्ध करने की कोई औपचारिक नीति नहीं है, तो भी एलएएफ ने रिज़र्व बैंक को इस योग्य बना दिया है कि बैंक रिज़र्व के लक्ष्यों पर जोर को कम किया जाए तथा ब्याज दरों पर उत्तरोत्तर रूप से ध्यान केंद्रित किया जाए। रात्रिभर के लिए ब्याज दरें अब उत्तरोत्तर रूप में प्रधान परिचालन लक्ष्य के रूप में उभर रही हैं (मोहन 2004)।

6.127 जहां भारत में मौद्रिक प्रणाली अभी भी विकसित हो रही है, तथा अर्थव्यवस्था में विभिन्न अंतःक्षेत्रीय संपर्कों में परिवर्तन हो रहा है, वहां संप्रेरण सरणियों पर उभरता हुआ साक्ष्य यह सुझा रहा है कि परिमाणात्मक सरणियों की तुलना में दर सरणियां धीरे-धीरे महत्व प्राप्त करती जा रही हैं। मुद्रा आपूर्ति संबंधी तीसरे कार्य दल (1998) द्वारा प्रस्तुत अर्थमितीय साक्ष्य यह संकेत करते हैं कि ब्याज दर के माध्यम से नीतिगत परिचालन के प्रति उत्पाद प्रतिक्रिया साशक्त होती जा रही है। इसी प्रकार, मुद्रास्फीति पर स्फीतिकारी मौद्रिक नीति का प्रभाव, अर्थव्यवस्था के सीमित रूप में खुले होने की स्थिति में, विनिमय दर के मुकाबले ब्याज दरों के माध्यम से अधिक सबल होता जा रहा है।

6.128 बढ़ते हुए बाजारोन्मुखीकरण के कारण, भारत में मौद्रिक नीति उन संरचनागत और विनियामक उपायों पर ध्यान केंद्रित करती रही है जो वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ करने तथा वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों की कार्य प्रणाली में सुधार लाने के लिए बनाई गई है। विशेषज्ञों तथा बाजार सहभागियों के साथ व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात अनेक उपाय शुरू किए गए हैं तथा वे इन उपायों को मौद्रिक

नीति की परिचालनगत दक्षता बढ़ाने, रिज़र्व बैंक की विनियामक भूमिका को पुनः परिभाषित करने, विवेकसम्मत तथा पर्यवेक्षी मानकों को सुदृढ़ करने, ऋण सुपुर्दगी प्रणाली में सुधार लाने, तथा वित्तीय क्षेत्र के प्रौद्यागिकीगत तथा संस्थागत ढांचे को विकसित करने की ओर मोड़ा गया है (रेड्डी 2000)। प्रौद्योगिकी के अपविनियमन के साथ संपर्क ने भी एक अधिक खुले, प्रतिस्पर्धी और वैश्वीकृत वित्तीय बाजार के अभ्युदय में योगदान किया है। इन विभिन्न सुधारों ने सुदृढ़ आधार की नींव डाली है, जिसने रिज़र्व बैंक को पूर्व एशियाई जैसे संकटों, प्रतिबंधों, तथा घरेलू अनिश्चितताओं जैसी अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों से अधिक प्रभाव शाली रूप से निपटने में तथा एक सम्माननीय वृद्धि दर यथोचित मूल्य और विनिमय दर स्थिरता प्राप्त करने में सहायता की है। विशेषकर संकट वाले वर्षों में रिज़र्व बैंक द्वारा मौद्रिक नीति के संचालन ने देश में और विश्व भर में दोनों ओर से सम्मान और विश्वासनीयता प्राप्त की है।

6.129 मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों के बीच बढ़ते संपर्क रिज़र्व बैंक से यह अपेक्षा करते हैं कि वह विदेशी मुद्रा बाजार में अत्यधिक उद्वेगशीलता को रोकने के लिए कभी-कभी हस्तक्षेप करने के साथ-साथ अल्पावधिक मौद्रिक उपायों का भी उपयोग करे। वर्तमान बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर व्यवस्था में विदेशी मुद्रा बाजारों में सुव्यवस्थिति स्थिति बनाए रखना, अस्थायी रूप से उभरे मांग आपूर्ति के अंतरालों को पूरा करना (जो अनिश्चितताओं या अन्य कारणों से उभर सकते हैं)। इस संदर्भ में, रिज़र्व बैंक देश में तथा विदेशों में हो रही गतिविधियों पर बड़ी बारीकी से निगाह रखे हुए हैं तथा ऐसे उपाय करता है जो यह समय-समय पर आवश्यक समझता है।

पारदर्शिता, सहयोग तथा सर्वोत्तम संव्यवहार

6.130 बाजार परिचालनों में पारदर्शिता वित्तीय बजारों के सुचारू कार्यकलाप के लिए तथा दक्ष मौद्रिक नीति के संप्रेषण प्रणाली-तंत्र के लिए अनिवार्य है (ब्यौरे अध्याय III में) । पारदर्शिता का लाभ यह है कि केंद्रीय बैंक के चालू और भावी व्यवहार के बारे में सूचनाएं उजागर करती है तथा उसके द्वारा प्रत्याशा के निर्माण तथा बाजार के व्यवहार को प्रभावित करती है। वैश्वीकरण के संदर्भ में, अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं जैसे वास्तविक क्षेत्र, ब्याज और विनिमय दरों, तथा मूल्यों से संबंधित पर्याप्त, समय पर तथा गुणवत्ता पूर्ण आंकड़ों बाजारों के दक्ष परिचालन के लिए के प्रसारण की आवश्यकता को महत्व प्राप्त हुआ है, क्योंकि अपर्याप्त सूचना परिणाम असमान सूचना के रूप में हो सकता है, तथा यह बाजारों में नैतिक संकट तथा उच्च उद्वेगशीलता की ओर ले जा सकता है। अतः रिज़र्व बैंक ने बाजारों के व्यवस्थित कार्य कलापों को सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से नियमित अंतरालों पर वित्तीय बाजारों पर आंकड़े तथा अपने परिचालनों के संबंध में प्रसारण करने के लिए अनेक पहलों की शुरुआत की है।

6.131 पूर्व-एशियाई, लैटिन अमरीकी, तथा रूसी वित्तीय संकटों के बाद वित्तीय प्रणाली के विनियामकों तथा केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग तथा सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए मान्यता बढ़ती जा रही है (ब्यौरे अध्याय III में)। भारत वित्तीय मानकों तथा संहिताओं के अनेक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मंचों की कार्य प्रणाली में सक्रिय रूप से भाग लेता रहा है। सेबी के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय प्रतिभूति आयोग संगठन (आइओएससीओ) में भारत का प्रतिनिधित्व किया गया है तथा यह विशेष डाटा प्रसारण मानक (एडीडीएस) का पहले से ही अभिदानकर्ता रहा है।

6.132 वैश्वीकरण तथा घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के बीच मिटते विभेदों ने (इक्विटी बांडों और विदेशी मुद्रा लिखतों के लिए) ठोस और सुदृढ़ वित्तीय बाजारों और संस्थाओं के निर्माण के लिए सर्वोत्तम संव्यवहारों की संहिता की आवश्यकता बढ़ा दी है। जहां मुद्रा बाजार आम तौर पर एक राष्ट्रीय बाजार होता है, वहीं सरकारी प्रतिभूति बाजार, ईक्विटी बाजार तथा विदेशी मुद्रा बाजार उत्तरोत्तर वैश्विक रूप से समन्वित हो गए हैं, जो आस्तियों के मूल्यन, लेखांकन मानदंड, तथा विनियामकों और बाजार सहभागियों द्वारा प्रकटीकरण मानदंडों जैसे बाजारों से संबंधित विभिन्न पहलुओं के संबंध में मानकों और संहिताओं का एक एक समान सैट की मांग करता है । प्रतिभूति बाजारों के मामले में आइओएसीओ ने वैश्विक मानकों और मानदंडों को बनाने में और डेरिवेटिव्स मार्केट के लिए अंतरराष्ट्रीय स्वैप और डेरिवेटिव्स संघ (आइएसडीए) ने बाजार की सर्वोत्तम परंपराओं का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके साथ ही, इन एजेंसियों द्वारा किए गए प्रयासों के अलावा, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे आइएमएफ, विश्व बैंक तथा जी-20 ने भी वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय बाजारों के लिए सर्वोत्तम वैश्विक संव्यवहारों के एकीकरण करने में काफी रुचि दर्शाई है।

संस्थागत तथा प्रौद्योगिकीगत बुनियादी संरचना

6.133 उदारीकृत वित्तीय बाजार में घरेलू और वैश्विक बाजारों में प्रभावी रूप से प्रतिस्पर्धी बनने के लिए सहभागियों को दक्ष संस्थागत और प्रौद्योगिकीगत बुनियादी संरचना की आवश्यकता होती है। वित्तीय बाजारों की दक्षता को बढ़ाने के लिए बनाए गए अधुनातम प्रौद्योगिकीय बुनियादी संरचना तथा अन्य समर्थनकारी संस्थागत ढांचों को स्थापित करने में केंद्रीय बैंकों को मुख्य भूमिका निभानी पड़ती है। वित्तीय बाजारों के विकास के लिए संस्थागत तथा प्रौद्योगिकीगत बुनियादी संरचना के क्षेत्र में सुपुर्दगी बनाम भुगतान प्रणाली, भारतीय समाशोधन निगम, तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस), केंद्रीकृत निधि प्रबंध प्रणाली (सीएफएमएस) : एनडीएस तथा सांचागत वित्तीय संप्रेषण समाधान (एसएफएमएस) को परिचालन में लाकर रिज़र्व बैंक ने अनेक पहलें की हैं । (विस्तार के लिए अध्याय IV देखें)।

कानूनी ढांचा

6.134 वित्तीय बाजार के सुधार कानूनी ढांचे में तदनुरूपी गतिविधियों पर निर्भर करते हैं। कई अन्य देशों की तरह भारत में भी विधानों में परिवर्तन एक क्रमिक और धीमी प्रक्रिया है, जो भारत में बाजारों के विकास में बाधक बनी हुई है। वैधानिक परिवर्तन जो सुधारों के समर्थन के लिए अपेक्षित हैं, 1993 के बाद से उत्तरोत्तर कठिन होते जा रहे है। अतः कुछ वांछित परिवर्तनों को विद्यमान कानूनों के मानदंडों और संरचना के भीतर ही समायोजित करना होगा (रंगराजन 2000)। वित्तीय बाजारों के विकास के लिए किए गए अनेक उपायों के लिए विधान में परिवर्तन या नए कानूनों को लागू करने की अपेक्षा है। उदाहरण के लिए इनमें लोक ऋण अधिनियम में किए गए संशोधन तथा सरकारी प्रतिभूति विधेयक को प्रस्तुत करना (सरकारी प्रतिभूतियों में लेनदेन करने के लिए नमनीयता प्रदान करने तथा खुदरा बिक्री को सुविधाजनक बनाने के लिए) भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में संशोधन (अन्य बातों के अलावा, सीआरआर / एसएलआर के लिए सांविधिक न्यूनतम स्तर को घटाकर मौद्रिक नीति संबंधी परिचालनों पर लचीलापन लाना, ऋण प्रबंधन के कार्यों को अलग करना, आदि) राजकोषीय दायित्व तथा बजट प्रबंध अधिनियम (एफआरबीएम) को अधिनियम बनाना (राजकोषीय प्रबंधन पर यथोचित नियंत्रण लाना), बैंककारी विनियमन अधिनियम में संशोधन (प्रतिभूति नियमों, तथा बैंकिंग के विनियामक ढांचे को इसमें शामिल करना), परक्राम्य लिखत अधिनियम में संशोधन (इलेक्ट्रोनिक चेक, प्रतिभूतिकृत प्रमाणपत्र, तथा अन्य विकासशील उत्पादों को इसके अंतर्गत लाने के लिए इसे सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अनुरूप बनाना) तथा आस्ति प्रतिभूतिकरण संबंधी विधेयक का अधिनियम बनाना (आस्ति प्रतिभूतिकरण के लिए बाजार को समर्थनकारी परिवेश उपलब्ध कराने के लिए) शामिल है।

6.135 केंद्रीय बजट 2005-06 में की गई घोषणा के अनुसार अन्य बातों के साथ-साथ ओटीसी डेरिवेटिव्स को कानूनी रूप से वैध बनाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 में संशोधन करने के लिए एक विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार सरकारी प्रतिभूति विधेयक में सरकारी प्रतिभूतियों के बाजार को व्यापक बनाना है, जिसमें खुदरा हित को सुविधाजनक बनाने के साथ-साथ एक सुव्यवस्थित द्वितीयक बाजार को सुनिश्चित करना है। इस विधेयक के द्वारा लोक ऋण के प्रबंधन में अपेक्षित कुछ ठोस सुधार निम्नलिखित हैं- (i) द्वितीयक बाजार की तरलता को बेहतर बनाने के लिए सरकारी प्रतिभूतियों को वापस लेकर उनका पुनर्गठन करना तथा निवेशकों के लिए बेहतर जोखिम आबंटन में समर्थ बनाना, (ii) सरकारी प्रतिभूतियों के दृष्टिबंधक, गिरवी के लिए प्रावधान करना तथा उनके लिए धारणाधिकार, पुनर्ग्रहणाधिकार का निर्माण करना आदि। इन उपायों से बाजार की गतिविधियां सुविधाजनक बनने की आशा है।

परामर्शकारी दृष्टिकोण की भूमिका

6.136 भारत में वित्तीय बाजार के सुधारों का प्रमाण चिह्न एकमत के निर्माण का रहा है जिसे अंतर्विभागीय कार्यदलों, अंतर्एजेंसी समितियों तथा तकनीकी परामर्शदाता समितियों का निर्माण के स्तरों पर तथा वित्तीय बाजार समिति (एफएमसी) (निगरानी स्तरपर) के माध्यम से परिचालित किया जाता है। इसका उद्देश्य है नीति निर्माण और उसके कार्यान्वयन के स्तरों पर सभी पणधारकों को शामिल करना । ज्यादा अपविनियमन विनियामक द्वारा बाजार की गतिविधियों की बारीकी से निगरानी करने की महत्ता को रेखांकित करता है। जो रिज़र्व बैंक में एफएमसी के माध्यम से क्रियान्वित होता है। (यह रोजाना बाजारों के खुलने से पहले और कभी-कभी एक से अधिक बार जब भी स्थिति की मांग हो बैठक करती है)। वित्तीय बाजार समिति वित्तीय बाजारों में चलनिधि तथा ब्याज दर की स्थिति की समीक्षा करती है तथा सर्वोच्च प्रबंध-तंत्र को उस कार्रवाई की सलाह देती है जो दिन के दौरान रिज़र्व बैंक द्वारा की जानी अपेक्षित है। यह संस्थागत ढांचा रिज़र्व बैंक द्वारा वित्तीय बाजारों पर प्रभाव डालने वाले सभी महत्वपूर्ण निर्णयों पर एक समेकित दृष्टिकोण अपनाने में सहायता करता है। चूंकि वित्तीय बाजारों में अत्यधिक उद्वेगशीलता बैंकों के तुलनपत्रों को क्षति पहुंचा सकती है, बाजारों के विश्वास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है, तथा वित्तीय स्थिरता के लिए खतरा पैदा कर सकती है, अतः रिज़र्व बैंक वित्तीय बाजार के विभिन्न घटकों में हो रही गतिविधियों की निरंतर निगरानी करता है तथा आवश्यक उपचारात्मक उपाय करता है। बाजार चौकसी पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करने के लिए रिज़र्व बैंक में एक अलग से वित्तीय बाजार विभाग की स्थापना की गई है।

III. निष्कर्ष

6.137 भारत में गत सात दशकों में वित्तीय बाजार के विकास की समीक्षा यह प्रकट करती है कि रिज़र्व बैंक एक गहन तथा ऊर्जस्वित मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों की संरचना करने में सफल रहा है, हालांकि उन्हें अभी और भी सुदृढ़ बनाने की जरूरत है। सुधारों की प्रक्रिया की सफलता अब तक कई घटकों पर निर्भर रही है, जैसे व्यापक आर्थिक स्थिरता, सुदृढ़ वित्तीय संस्थाएं, अनुकूल कानूनी ढांचा, प्रौद्योगिकीगत समर्थन तथा अनुकूल नीतिगत परिवेश। इसके अलावा, वित्तीय बाजार के सुधार अन्य क्षेत्रों में सुधारों से भी अंशतः संशोधित किए गए विशेषकर, राजकोषीय सुधारों तथा बाह्य क्षेत्रों में सुधारों से भी अंशतः संशोधित किए गए विशेषकर, राजकोषीय सुधारों तथा बाह्य क्षेत्र में सुधारों से । भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधार ने मौद्रिक नीति के संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र के सुविधाजनक बनाने के अलावा मौद्रिक नीति की रणनीतियों को सुविधाजनक बनाया, इससे ऋण आबंटन पर जोर देने के स्थान पर मौद्रिक लक्ष्य पर और बाद में बहुल संकेतक दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित किया। वित्तीय बाजार के विकास के बिना ये परिवर्तन

संभव नहीं हुए होते। भारत में ब्याज दर व्यवस्था के अविनियमन की सफलता मुख्यतः समानान्तर रूप से वित्तीय बाजारों के विकास के कारण हो सकी। वित्तीय बाजारों ने बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को अपने कार्यकलापों, चलनिधि तथा कोषागार परिचालनों को बेहतर रूप में प्रबंधन करने में समर्थ बनाया है, और इस प्रकार अपनी निधि आधारित आय और लाभप्रदता को सुदृढ़ किया। इसके अलावा 1990 के बाद के दशक में वित्तीय बाजारों की वृद्धि ने बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपने आस्ति एवं देयता प्रबंधन को सुधारने में योगदान किया है। साथ ही साथ, बड़ी कंपनियों द्वारा अपने वित्तपोषण संबंधी पैटर्न में उल्लेखनीय बदलाव लाया गया। और उन्होंने अपने संसाधनों को बैंकों द्वारा जुटाने की बजाए वित्तीय बाजारों से जुटाए।

6.138 यद्यपि रिज़र्व बैंक द्वारा की गई विभिन्न पहलों के परिणामस्वरूप मुद्रा बाजार, सरकारी प्रतिभूति बाजार तथा विदेशी मुद्रा बाजार गहन और व्यापक हुए हैं, फिर भी सुधारों की प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है।

6.139 मुद्रा बाजार में रिज़र्व बैंक की नीति का जोर प्रतिभूति समर्थित ऋण बाजार के विकास को प्रोत्साहित करने, रेपो और सीबीएलओ के लिए प्रतिभूति के रूप में कार्य करने के लिए प्रतिभूतियों के पूल को व्यापक आधारवाला बनाने तथा आस्ति देयता प्रबंधन के ढांचे में और सुधार लाने के लिए बेहतर जोखिम प्रबंधन के लिए अवसर प्रदान करने पर रहेगा। एफआरबीएम के परिवेश में, सरकारी प्रतिभूति बाजार में उपयुक्त सुरक्षोपायों के साथ शॉर्ट-सेलिंग, 'ह्वेन इश्यूड' बाजार का विकास करना सक्रिय समेकन तथा प्रभावी ऋण प्रबंधन को सुनिश्चित करना कुछ ऐसी चुनातियां हैं जिन्हें रिज़र्व बैंक को फिलहाल झेलना पड़ रहा है। विदेशी मुद्रा बाजार में पूंजी खाता परिवर्तनीयता समिति की सिफारिशों के अनुसार पूंजी खाते का और उदारीकरण रिज़र्व बैंक को नई चुनातियां खड़ी कर सकता है। जोखिम प्रबंध प्रणालियां, डरिवेटिव्स लेखांकन मानकों, ग्राहक अनुकूलता तथा उपयुक्तता मानकों पर अधिक ध्यान देना होगा तथा प्रकटीकरण को सुधारना होगा।

6.140 भारतीय वित्तीय बाजारों का वैश्विक बाजार के साथ समन्वय के संदर्भ में, रिज़र्व बैंक अपने विनियामक प्रणाली-तंत्र को निरंतर उन्नत और अद्यतन बनाता रहा है ताकि वे वैश्विक मानकों के समकक्ष बन सकें। वित्तीय स्थिरता की सुरक्षा करने के लिए रिज़र्व बैंक सहित केंद्रीय बैंकों को चालू तथा विकसित हो रही वैश्विक गतिविधियां जैसी प्रचुर चलनिधि, तथा वैश्विक वित्तीय बाजारों में निम्न ब्याज दरें, वित्तीय बाजारों के सहभागियों की बढ़ती हुई उन्नत क्षमता, तथा जटिल और अत्यधिक समर्थित ऋण डेरिवेटिव्स सहित वित्तीय लिखतों तथा सांचागत उत्पाद जैसे संपार्श्विकीकृत ऋण दायित्वों के कारण चलनिधि और ब्याज दरों का जाखिम बढ़ सकता है तथा वित्तीय बाजारों में उद्वेगशीलता काफी बढ़ सकती है यदि अचानक और तेज समायोजन किया जाए । यह मुद्दा हाल में वित्तीय क्षेत्र में समेकन की हाल की गतिविधियों के संदर्भ में अधिक प्रासंगिक हो गया है। अच्छे दिनों में वित्तीय बाजारों के लिए एक मात्र सबसे महत्वपूर्ण जोखिम कारक आत्मतोष है। विश्व व्यापी वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट, 2005)। इसके साथ अन्य कारक जैसे निम्न जोखिम तथा जटिल वित्तीय लिखतों से निपटने वाली जोखिम प्रबंध प्रणालियों के अपरीक्षित तत्व अंततः वित्तीय बाजारों के लिए खतरनाक हो जाते हैं। ये गतिविधियां रिज़र्व बैंक तथा अन्य केंद्रीय बैंकों को चुनातियां खड़ी कर देती हैं क्योंकि उन्हें इनकी मौद्रिक नीति की प्रतिकियाओं को बनाते समय अभिव्यक्त करना होता है, व्यवस्थागत चलनिधि जोखिमों को पूरा करने के लिए रणनीति बनाने तथा जोखिमों को दूर करने तथा वित्तीय बाजार के नवोन्मेषों पर घनिष्ठ निगरानी रखनी पड़ती है।

6.141 रिज़र्व बैंक सहित केंद्रीय बैंकों को वित्तीय मध्यस्थ जोखिम प्रोफाइल, विशेषकर संकेंद्रण जोखिम तथा अचानक आने वाले बाजार मूल्य आघातों के प्रति उनकी संवेदनशीलता के प्रति सतर्क रहना पड़ता है। चालू वैश्विक वित्तीय परिदृश्य उपयुक्त जोखिम प्रबंध रणनीतियों तथा बेहतर समन्वय तथा विदेशों की प्रतिकूल गतिविधियों का देशी अर्थव्यवस्था तथा बाजारों पर आनेवाले प्रभावों को रोकने के लिए केंद्रीय बैंकों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

6.142 वित्तीय बाजारों में इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के होते हुए भी, ऐसे अनेक अतिसूक्ष्म कारक हैं जिनका मौद्रिक नीति पर प्रभाव हो सकता है। कुछ गतिविधियां जिनका आनेवाले वर्षों में मुद्रा और सरकारी प्रतिभूति बाजारों के आकार और विकास पर प्रभाव पड़ सकता है, वे हैं एफआरबीएम अधिनियम, 2003 का अनुपालन (जो 1 अप्रैल 2006 से केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों की प्राथमिक नीलामियों में रिज़र्व बैंक की सहभागिता को समाप्त कर देगी) जहां इससे ऋण प्रबंधन के कार्यकलापों को मौद्रिक परिचालनों से पृथक् कर दिया जाएगा जो रिज़र्व बैंक मौद्रिक परिचालनों में लचीलापन तथा अपने तुलनपत्र की संरचना में बेहतर नियंत्रण रखने में समर्थ बनाएगा, वहीं यह वित्तीय बाजारों में दीर्घकालीन स्थिरता बनाए रखने के लिए रिज़र्व बैंक तथा सरकार के बीच बेहतर समन्वय की मांग करेगा। बदले हुए मौद्रिक तथा ऋण प्रबंध परिदृश्यों के संदर्भ में रिजर्व बैंक को अपने खुले बाजार के परिचालनों तथा चलनिधि समायोजन सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए उपाय करने होंगे। अल्पावधि से मध्यावधि में बाजार चलनिधि का पूर्वानुमान लगाने में बेहतर सटीकता बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। रिज़र्व बैंक रेपो के लिए प्रतिभूति के रूप में कार्य करने के लिए प्रतिभूतियों के समूह को व्यापक आधार प्रदान करने के मुद्दे की भी जांच करनी होगी।

6.143 मध्यावधि में रिज़र्व बैंक को जिस दूसरी चुनौती का सामना करना होगा वह है - भारतीय अर्थव्यवस्था का बढ़ता हुआ खुलापन तथा सुदृढ़ पूंजी के आगमों के बाद चलनिधि का प्रबंधन। चूंकि वित्तीय बाजारों में अत्यधिक उद्वेगशीलता, विनिमय दरों और ब्याज दरों के बीच परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध होता है जो एक ओर अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मकता में क्षरण और दूसरी ओर निष्प्रभावीकरण की वित्तीय लागत (जो विदेशी मुद्रा भंडार के विनियोजन से प्राप्त आय के ऊपर निष्प्रभावीकृत राशि पर कूपन के बहिर्गमन के रूप में मापी गई है) परिणत हो सकता है । रिज़र्व बैंक को अपने निष्प्रभावीकरण की परिचालनों में उचित रूप से संतुलन लाना होगा । इसके अलावा, निष्प्रभावीकरण का प्रभाव मुद्रा बाजार में अल्पावधिक ब्याज दरों के स्थिरीकरणों के मुद्दे के लिए भी पड़ेगा जो रिजर्व बैंक द्वारा अपने नीति संबंधी लिखतों को बेहतर बनाने की मांग करता है ताकि मांग मुद्रा की दरों को सीमित दायरे में (रेपो और रिवर्स रेपो की दरों के बीच) रखा जा सके।

6.144 उदारीकृत तथा समन्वित वित्तीय प्रणाली तथा बाजार केंद्रीय बैंकों के समक्ष नई चुनौतियां खड़ी करते हैं क्योंकि समष्टिगत अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में विद्यमान विकृतियों को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। यह अकसर अत्यधिक आशावादिता तथा वित्तीय आस्तियों के न्यून मूल्यांकन को जन्म देती है, जो पूंजी खाते की परिवर्तनीयता और उच्च राजकोषीय घाटे के साथ मिलकर संकट की ओर ले जाती हैं। एक उदारीकृत वित्तीय प्रणाली में, यह विनियमन नहीं, बल्कि यह बाजार अनुशासन है, जो वित्तीय स्थिरता बनाए रखता है। इसके लिए बेहतर पारदर्शिता, सुदृढ़ संस्थाओं का पोषण करने वाली तथा बेहतर जोखिम विश्लेषण प्रणालियों को विकसित करने की आवश्यकता बताती है । बाजार अनुशासन में सुधार भी बैंकों, वित्तीय बाजार के प्रमुख खिलाड़ियों तथा विनियामकों के बीच बेहतर समन्वय की मांग करता है) अतःबाजार अनुशासन (बेसिल II, पिलर III) को महत्व प्राप्त हो जाता है । भारत में वाणिज्य बैंक 31 मार्च 2007 से बासल II मानदंडों को लागू करना शुरू करेंगे। वित्तीय स्थिति में और बैंकों के जोखिम प्रोफाइल में बेहतर पारदर्शिता लाने के लिए भारत प्रकटीकरण के क्षेत्र को बढ़ा रहा है। बासल II को अपनाने से जोखिम प्रबंध प्रणालियों को सुधारने तथा भारतीय बैंकों की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाएंगे। और इस प्रकार उन्हें वैश्विक वित्तीय बाजारों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने में समर्थ बनाएगा।

6.145 वर्षों से विश्व भर में मौद्रिक और वित्तीय प्रणाली में हो रहे परिवर्तनों ने वित्तीय बाजारों की गति को ही बदल दिया है। मौद्रिक नीति के क्षेत्र में निम्न और स्थिर मुद्रास्फीति के साथ-साथ अत्यधिक सुदृढ़ केंद्रीय बैंकों ने मौद्रिक सक्रियता को बदल दिया है। इसके फलस्वरूप जहां बढ़ती हुई मुद्रास्फीति अब कोई मुख्य चिंता नहीं रह गई है, आस्ति मूल्यों तथा ऋण में अत्यधिक वृद्धि प्रमुख चुनौतियों के रूप में उभरी हैं जिन्हें केंद्रीय बैंकों को झेलना पड़ता है, क्योंकि यह स्थिति वित्तीय अस्थिरता की ओर ले जा सकती है। चूंकि अर्थव्यवस्था, अधिक चक्रोन्मुखी हो गई है अतः मुद्रास्फीति वित्तीय स्थिरता को अब आगे से प्रमुख संकेतक नहीं है, क्योंकि आस्ति मूल्यों में भारी झुकाव वित्तीय अस्थिरता की ओर ले जा सकती है। वित्तीय स्थिरता के संदर्भ में बेहतर पारदर्शिता के अलावा, अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों तथा बैंकों में विद्यमान प्रवृत्तियों का बेहतर विश्लेषण, दबावों और नीतियों के संकेतों का पता लगाने में जो मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को बेहतर रूप से प्रभावित करते हैं तथा सावधानीपूर्वक अंतरराष्ट्रीय पूंजीगत आवागमन के उदारीकरण ने महत्व प्राप्त कर लिया है। रिज़र्व बैंक तथा दूसरे केंद्रीय बैंकों को बाजार प्रेरित रणनीतियों तथा उन नीतियों का अनुसरण करना है जो स्थिर हों तथा अपेक्षाओं को पूरी करने वाली हों, राजकोषीय अनुशासन तथा गहन और सुचारू रूप से कार्य करने वाले वित्तीय बाजार केंद्रीय बैंक की नीति संबंधी रणनीति की सफलता के लिए आवश्यक है।